यज्ञ पिता-गायत्री माता

– श्रीराम शर्मा आचार्य

यज्ञ पिता गायत्री माता

❋

गुरुदेव

परमपूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

जिज्ञासु

पं० लीलापत शर्मा

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

२०१० **मूल्य : १८.०० रुपये**

भूमिका

यज्ञ और गायत्री हमारी देव संस्कृति के दो मूल आधार हैं । इसी से यज्ञ को भारतीय संस्कृति का पिता और गायत्री को उसकी माता कहा गया है। इनके बिना तो फिर हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा । चारों ओर व्याप्त आसुरी शक्तियों को, लोभ-लालच-लिप्सा की पशु प्रवृत्तियों को, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय अराजकताओं को तथा अपराधिक अवांछनीयताओं को समूल नष्ट करने हेतु यज्ञ और गायत्री ही अमोघ ब्रह्मास्त्र हैं । इन दोनों को भूल जाने के कारण ही भारतीय समाज की आज इतनी दुर्दशा हो रही है ।

परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से इस तथ्य को बहुत पहले ही पहचान लिया था । पशुता की भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों के दुर्गंधयुक्त दल-दल में आकंठ डूबे हुए मनुष्य को देखकर भी उन्होंने कभी निराशा या हताशा का अनुभव नहीं किया । उन्होंने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की थी कि मनुष्य परमेश्वर का राजकुमार है, दिव्य क्षमताओं से परिपूर्ण है, देवता है । वह केवल परिस्थितिवश अपने लक्ष्य से भटक गया है । सद्बुद्धि का जागरण होने से वह स्वयं इन समस्याओं से सफलतापूर्वक जूझ सकता है । इसी से यज्ञ व गायत्री को उन्होंने

पुनर्प्रतिष्ठित किया । देश के कोने–कोने में और विदेशों में भी लोगों की श्रद्धा–भावना को जाग्रत किया । आज करोड़ों व्यक्ति यज्ञ और गायत्री के महत्व को समझकर अपनी आत्मिक प्रगति भी कर रहे हैं और लोक–मंगल के कार्यों में भी रुचि ले रहे हैं ।

पूज्य गुरुदेव सदैव ही अनेक विषयों पर हमारी शंकाओं व जिज्ञासाओं का समाधान करते रहते थे । यज्ञ और गायत्री के आध्यात्मिक, दार्शनिक, भौतिक, वैज्ञानिक आदि अनेक पक्षों पर भी उनसे समय–समय पर हमारी चर्चा होती थी । इससे अनेक प्रचलित आशंकाओं एवं भ्रांतियों का सहज ही निवारण हो सकता है । विदेशी सभ्यता के मायाजाल में भटक रही नई पीढ़ी तो इन विचारों से विशेष रूप से लाभान्वित हो सकेगी।

इस पुस्तक में व्यक्त विचार पूज्य गुरुदेव के ही हैं । जैसे भी बन पड़ी है यह पुस्तक 'तेरा तुझको अर्पण' की भावना से श्रीचरणों में श्रद्धापूर्वक सादर समर्पित है ।

प्रकाशक

यज्ञ पिता और गायत्री माता

का असीम अनुदान-वरदान प्राप्त करने के लिए प्रत्येक को निम्नलिखित दस नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए।

❋ कम-से-कम दस मिनट नित्य नियमित गायत्री उपासना।

❋ घर में अपने से बड़ों का नियमित अभिवादन।

❋ छोटों के सम्मान का ध्यान रखना।

❋ परिश्रमशीलता का अभ्यास करना, किसी काम को छोटा न समझना।

❋ नियमित स्वाध्याय करना। जीवन को सही दिशा देने वाला सत्साहित्य कम-से-कम एक घंटे प्रतिदिन स्वयं पढ़ना या सुनना।

❋ सादगी का जीवन जीना। सदैव औसत भारतीय स्तर के रहन-सहन के अनुरूप विचार एवं अभ्यास बनाना और उसमें गौरव का अनुभव करना।

❋ ज्ञानयज्ञ, सद्विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए यथासंभव अपनी क्षमता व प्रतिभा को नियोजित करना।

❋ परिवार में सामूहिक उपासना, प्रार्थना, आरती आदि का क्रम प्रारंभ करना।

❋ समाज के प्रति एवं अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक रहना तथा पूरी शक्ति से अपने कर्त्तव्यों का पालन करना।

❋ समाज में सद्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए किए जाने वाले सामूहिक प्रयासों में उत्साह भरा योगदान देना। ❋

卐 यज्ञ पिता गायत्री माता 卐

आश्रम में दैनिक यज्ञ तो होता ही था । एक बार जाड़े के दिन थे । यज्ञ के पश्चात पूज्य गुरुदेव धूप में बैठे थे । इधर उधर की चर्चा हो रही थी, हमने भी एक शंका उनके समक्ष प्रकट की ।

''पूज्यवर यह 'यज्ञ पिता, गायत्री माता' क्यों कहते हैं ? कई बार आश्रम में आने वाले अतिथि भी पूछते हैं तो उन्हें संतुष्ट करना कठिन हो जाता है क्योंकि हम स्वयं भी इसके मर्म से भली भांति परिचित नहीं हैं । आप कृपया इसे विस्तार से समझाएं ।''

गुरुदेव एकदम गंभीर हो गए । कुछ देर ध्यानमग्न रहकर बोले, ''तुम ठीक कहते हो । आजकल भारतीय दर्शन व संस्कृति के प्रति लोगों की उदासीनता बढ़ती जा रही है । जिसे देखो वही अंग्रेजियत के रंग में सराबोर है, उल्टी-सीधी विदेशी परंपराओं की भोंडी नकल करने में अपनी शान समझता है और अपने देवी-देवताओं की, दिव्य परंपराओं की अवहेलना ही नहीं वरन उपहास तक करता है । यह सब विदेशी शिक्षा का दुष्प्रभाव है जिसके फलस्वरूप संस्कृत भाषा तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति के पठन-पाठन को हतोत्साहित किया जाता है । तभी तो लोग यज्ञ व गायत्री की महत्ता को नहीं समझ पा रहे हैं । यही तो हमारे पतन का मुख्य कारण है ।

''यज्ञ और गायत्री तो दो मुख्य आधार हैं जिन पर वैदिक संस्कृति, सभ्यता, अध्यात्म, विज्ञान यहां तक कि हमारा तन-मन सभी कुछ टिका हुआ है । यही तो सारे संसार की, ब्रह्माण्ड व अंतरिक्ष की प्राणवायु है, जीवनी शक्ति है । यज्ञ को सत्कर्मों का तथा गायत्री को सद्विचारों का प्रतीक माना जाता है । इन्हीं दोनों के सम्मिलित स्वरूप से सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन होता है जिससे विश्व शांति तथा मानव कल्याण की संभावनाएं प्रबल होती हैं और यही प्राणी मात्र के कल्याण

का माध्यम बनती हैं । हमारे ऋषियों व मनीषियों ने इनको पिता व माता ऐसे ही तो नहीं कह दिया है । तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । प्रत्येक भारतीय को इस मूल तत्व के मर्म को हृदयंगम करना चाहिए । नई उम्र के बच्चों को तो इसे अवश्य ही समझाना चाहिए, उनके मस्तिष्क में अच्छी तरह से स्थापित कर देना चाहिए जिससे उनका चिंतन सही दिशा पा सके और वे भारत मां के सच्चे व उत्कृष्ट सपूत बनकर देश को विश्व के सर्वोच्च शिखर पर पुनर्प्रतिष्ठित कर सकें । मैं तुम्हें सरल भाषा में इसे समझाऊंगा, मन लगाकर सुनो व समझो और फिर इसका प्रचार करो ।

यज्ञ क्या है ?

"साधारणतः लोग यज्ञ का मतलब ही नहीं समझते । कहीं भी हवन कुंड में थोड़ी सी लकड़ियां रखीं, आग जलाई और सामग्री डाल दी । कुछ मंत्र बोल लिए । हवन कुंड न मिला तो कढ़ाई, तवा रख लिया, या ऐसे ही जमीन पर रखकर हवन कर दिया । इसी को लोग। हवन समझ लेते हैं । यह तो सचमुच एक मखौल जैसा ही हो गया ।"

"हां गुरुदेव ! ऐसा ही है । लोग तो इसे ही यज्ञ समझते हैं और कहते हैं कि इससे क्या लाभ ? बेकार में घी व अन्य सामान को आग में जलाकर बरबाद करने से तो अच्छा है कि उसे खा लें । इस मंहगाई के जमाने में कुछ तो शरीर में लगेगा ।" हमने निवेदन किया ।

"यही तो भ्रम है बेटा ! पहले यज्ञ का अर्थ तो समझो । यह एक साधारण क्रिया नहीं है । जो हो रहा है वह तो उसके क्रियात्मक पक्ष का भी विकृत रूप है । अरे, यज्ञ तो विज्ञान है, एक प्रयोगजन्य विज्ञान है । यज्ञ सारे संसार के पर्यावरण को संतुलित रखता है । बलवर्धन और रोग निवारण करता है, उत्कृष्ट दैवी तत्वों का संवर्धन करता है । यज्ञ मात्र अग्निहोत्रपरक कर्मकांड ही नहीं है, वह तो स्रष्टा के अनुशासन में भावना, विचारणा, पदार्थ एवं क्रिया के संयोग से उत्पन्न होने वाला एक अद्भुत पुरुषार्थ है । तभी जन्म से मृत्यु तक, बल्कि जन्म से पहले पुंसवन संस्कार से अंतिम संस्कार तक, सभी षोडश संस्कारों पर, पर्व-त्यौहारों

पर यज्ञ का आवश्यक विधान किया जाता है । संस्कार तो एक प्रकार का आध्यात्मिक उपचार है जो मानव जीवन को पवित्र और उत्कृष्ट बनाता है और यज्ञ हर संस्कार का अभिन्न अंग है । यज्ञ से ही चारों वेदों की उत्पत्ति हुई है । यजुर्वेद में तो विशेष रूप से यज्ञ की महिमा का वर्णन है । औषधि विज्ञान में, चरक संहिता में यज्ञ से उपचार का विस्तृत विधान है । यज्ञ से स्वास्थ्य तो सधता ही है परमार्थ का पुण्य भी प्राप्त होता है ।

तुम इसे इस तरह समझो कि यज्ञ की दो धाराएं कही जा सकती हैं । पहली धारा है यज्ञ का वह सनातन रूप, जो अनादिकाल से अबाध गति से चल रहा है, उससे सृष्टि की रचना हुई है और उसी से सृष्टि के पोषण परिवर्तन का चक्र चल रहा है । दूसरी धारा यज्ञ का वह लौकिक स्वरूप है जो संकल्पपूर्वक किया जाता है । उसके अंतर्गत अग्निहोत्रादि विविध यजन कर्मकांड आते हैं तथा लोकव्यवहार में 'जीवन यज्ञ' के रूप में जो अनिवार्यतः प्रयुक्त होता है । इस लौकिक यज्ञीय प्रक्रिया का मूल सूत्र है–अपने अधिकार क्षेत्र की श्रेष्ठतम वस्तु को देवकार्यों अथवा लोकमंगल के लिए समर्पित कर देना । शास्त्रकारों ने यज्ञ को दिव्य अनुशासन में किए गए श्रेष्ठ कर्म की संज्ञा दी है । 'यज्ञं वै श्रेष्ठतमः कर्मः' अर्थात श्रेष्ठतम कर्म ही यज्ञ है ।

बेटे, वेदों ने तो यज्ञ की महिमा का बारंबार बखान किया है । तुमने हमारा ऋग्वेद भाष्य तो पढ़ा ही है । उसमें हमने यज्ञ के अनेक रूपों की मीमांसा की है । वेद में यज्ञ के अनेक रूप परिलक्षित होते हैं –

१. प्रथम यज्ञ पराचेतन (विराट पुरुष या ब्रह्म) के संकल्प से सृष्टि के उद्भव के रूप में दिखाई देता है ।

२. एक स्वरूप यज्ञ का वह है, जिसके अंतर्गत उत्पन्न स्थूल एवं सूक्ष्म तत्व, अनुशासन विशेष का अनुपालन करते हुए, सृष्टि चक्र को सतत प्रवाहमान बनाए हुए हैं ।

३. यज्ञ का एक स्वरूप वह है जिससे प्राणि जगत प्रकृति के यज्ञीय प्रवाहों को आत्मसात करते हुए उत्पन्न ऊर्जा से स्वधर्मरत रहता है और प्रकृति के प्रवाहों को अस्त–व्यस्त नहीं होने देता ।

४. मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले कर्मकांडयुक्त देव यज्ञ उस वैज्ञानिक प्रक्रिया के अंग हैं, जिसके अंतर्गत मनुष्य प्रकृति के पोषक प्रवाहों को पुष्टि प्रदान करने का प्रयास करता है ।

महर्षि याज्ञवलक्य ने तो यज्ञ के दर्शन की विस्तृत विवेचना करते हुए कहा है कि यज्ञ तो प्राचीन भारत के ऊर्जा स्रोत रहे हैं । छिन्न-भिन्न राजव्यवस्था तथा आततायी नरेशों एवं राजाओं के उद्धत आचरण को संतुलित करने के लिए राजसूय यज्ञों का विधान था । अश्वमेध यज्ञ पतनशील संस्कृति एवं समाज व्यवस्था को नियंत्रित करते थे । यदि कहीं धार्मिक परंपराओं में पतन, पराभव और पीड़ा परिलक्षित होती थी तो 'वाजपेय यज्ञ' आचरणों में संशोधन-परिवर्तन करते थे । दैनिक अग्निहोत्र एवं बलिवैश्वदेव भी जन-जन की वृत्तियों को परिमार्जित बनाए रखने में अभूतपूर्व भूमिका निभाते थे । इन सब उपक्रमों के जनक थे याज्ञवलक्य ।

इतना बताकर गुरुदेव कुछ क्षणों के लिए रुके तो हम अनायास ही बोल पड़े, "पूज्यवर, आपने तो फिर उलझाना शुरु कर दिया । आजकल वेद, पुराण आदि पढ़ने का व उन्हें समझने का न तो किसी के पास समय है और न वैसी बुद्धि ही है । आप तो साधारण भाषा में उदाहरण व दृष्टांतों के माध्यम से बताएं जिससे बात जन साधारण की समझ में ठीक से आ सके ।"

गुरुवर यह सुनकर हंस पड़े और बोले, "लगता है तेरे अंदर नारदजी की आत्मा प्रवेश कर गई है । अच्छा तो फिर इसी प्रकार समझो ।"

यज्ञ मनुष्यों के द्वारा ही क्यों ?

"सबसे पहले तो यह समझो कि ऋषियों ने यज्ञ के लिए मनुष्यों को ही प्रेरित क्यों किया ? अन्य प्राणियों से इस प्रकार की कोई अपेक्षा क्यों नहीं की गई है । इसका कारण है कि संसार के सभी प्राणी प्रकृतिगत प्रवाहों का स्वाभाविक उपयोग करते हैं । प्रकृति से केवल उतना ही लेते हैं जो उनके निर्वाह के लिए पर्याप्त हो । उनमें से कोई भी 'प्रकृति का दोहन' नहीं करता । मनुष्य में प्रकृति का दोहन करने की क्षमता है । ईश्वर ने उसे जो सर्वश्रेष्ठ बुद्धि प्रदान की है, उसका वह दुरुपयोग कर

सकता है, और कर भी रहा है । आज चारों ओर हो क्या रहा है । मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग सृष्टि के नाश के लिए ही तो कर रहा है । ऋषियों-मनीषियों ने अपनी दूरदृष्टि से इस संभावना के गंभीर परिणामों की कल्पना हजारों वर्ष पूर्व ही कर ली थी और इसी से मनुष्य को यज्ञीय मर्यादाओं में बांध कर रखा था । उसका यह दायित्व रखा था कि यदि वह प्रकृति का दोहन करता है, तो उसके पोषण का भी विशेष प्रयास करे । जब तक मनुष्य इस यज्ञीय मर्यादा का पालन करता रहा चारों ओर सुख-शांति का ही साम्राज्य रहा । परंतु आज तो वह प्रकृति का केवल दोहन ही करना चाहता है । उसके पोषण का दायित्व और उसकी उपयुक्त प्रक्रिया दोनों को ही वह भुला चुका है । यही कारण है कि आज चारों ओर विप्लवों का जाल ही दिखाई दे रहा है जबकि यज्ञीय जीवन शैली अपनाकर भूमंडल पर स्वर्गीय परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकती हैं ।

यज्ञ में यज्ञीय भावनाओं के अभिवर्धन को बहुत महत्व दिया गया है । यज्ञ शब्द का भावार्थ है-पवित्रता, प्रखरता एवं उदारता । यही तत्वदर्शन व्यक्तिगत जीवन में भी समाविष्ट रहना चाहिए और लोक व्यवहार में भी इसकी उत्कृष्टता को प्रश्रय मिलना चाहिए । शास्त्रों में जीवन अग्नि की दो शक्तियां मानी गई हैं-एक स्वाहा, दूसरी स्वधा । स्वाहा का अर्थ है आत्मत्याग और अपने से लड़ने की क्षमता । स्वधा का अर्थ है जीवन व्यवस्था में 'आत्मज्ञान' को धारण करने का साहस ।

यज्ञ शब्द 'यज' धातु से बना है । जिसका अर्थ है देवपूजन, संगतिकरण और दान । ईश्वरीय दिव्य शक्तियों की आराधना-उपासना, उनकी समीपता-संगति तथा अपनी समझी जाने वाली वस्तुओं को उन्हें अर्पण करना ही यज्ञ की आध्यात्मिक प्रक्रिया है । देवगुण संपन्न सत्पुरुषों की सेवा एवं संगतिकरण तथा उन्हें सहयोग देना भी यज्ञ है । व्यवहारिक अर्थ में इसे यों भी कह सकते हैं कि बड़ों का सम्मान, बराबर वालों से संगति-मैत्री तथा अपने से छोटों को, कम शक्तिवालों को दान-सहायता करना यज्ञ है ।"

यज्ञीय भावना ही देवपूजन है, दान है

"गुरुदेव यह तो ठीक है ।" हमने कहा, "पर एक बात समझ में नहीं आई । यज्ञ की अग्नि में तो जो कुछ भी डालते हैं वह जलकर भस्म हो जाता है और आप कहते हैं कि यज्ञ से ही सृष्टि की रचना हुई है । यह कैसे संभव है ?"

"देखो बेटा ! यह तो तुम्हें कई बार समझा चुके हैं कि पूजा-पाठ, कर्मकांड सभी में क्रिया के साथ भावना भी आवश्यक है । यज्ञ में भी वही बात है । उसके साथ भी भावना, श्रद्धा एवं सक्रियता तीनों का समन्वय चाहिए तभी उससे पूरा लाभ मिलता है । अन्यथा केवल अग्नि संस्कार से जो प्रभाव अन्य पदार्थों पर पड़ता है वही हम सब पर भी पड़ेगा । यज्ञ से तात्पर्य है, देव पूजन, दान, त्याग, बलिदान व संगतिकरण । यज्ञ में हम अपने प्रिय खाद्य पदार्थ एवं मूल्यवान सुगंधित पौष्टिक द्रव्य अर्पित करते हैं । इस प्रकार हम कुछ न कुछ दान करते हैं, त्याग और बलिदान करते हैं । यही यज्ञ की मूल भावना है जो कि संसार के सभी क्रिया कलापों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है ।

"शिशु का निर्माण कैसे होता है ? माता ही तो अपने रक्त-मांस के एक भाग का त्याग इसके लिए करती है । असीम कष्ट सहती है, अपना शरीर निचोड़ कर उसे दूध पिलाती है । कितने निःस्वार्थ भाव से उसका पालन-पोषण करती है । बच्चे को सूखे में सुलाती है और स्वयं रात भर गीले में पड़ी रहती है । यदि मां यह सब त्याग व बलिदान न करे तो क्या शिशु का जन्म और जीवन धारण संभव हो सकेगा ? और देखो पिता भी तो इसमें कितना त्याग करता है । अपनी कमाई का अधिकतर भाग बच्चे के पालन पर, उसकी शिक्षा-दीक्षा पर व्यय करता है । उसकी उन्नति व प्रगति के लिए हर प्रकार के त्याग व बलिदान को सदा तत्पर रहता है । अब बोलो मनुष्य का जन्म यज्ञ भावना से ही होता है या नहीं ? इसी प्रकार इस सृष्टि की रचना हुई है ।

यज्ञ को 'भुवनस्य नाभिः' (ब्रह्मांड की नाभि) कहा गया है । प्रथम यज्ञीय पुरुषार्थ सृष्टि रचना के समय ही हुआ था । कथा सर्वविदित है-

विष्णु की नाभि से कमलनाल निकली । उसके विकास से कमल खिला । उस कमल में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा प्रकट हुए और सृष्टिक्रम चल पड़ा । यह एक अलंकारिक वर्णन है, जिसमें प्रथम यज्ञीय पुरुषार्थ का आभास कराया गया है ।

'यज्ञो वै विष्णुः'-यज्ञ ही विष्णु है एवं यज्ञ को 'भुवनस्य नाभिः' कहने से तात्पर्य यही है कि जिसमें से कमल एवं सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई वह दिव्य नाभि यज्ञ ही है । यज्ञीय पुरुषार्थ की कर्मवल्लरी आगे बढ़ी, उसके अंगोपांग कमल के रूप में विकसित हुए । उस विकास प्रक्रिया से जो कल्याणकारी यज्ञीय सृजन शक्ति उभरी, उसे ही सृष्टा ब्रह्मा की संज्ञा दी गई । इस प्रकार प्रकट हुई सृष्टि के संतुलन और विकास के लिए यज्ञीय अनुशासन एवं पुरुषार्थ को जाग्रत-विकसित बनाए रखने की बात कही गई ।

वृहत ब्रह्मांड में से ही एक भाग टूटकर यह पृथ्वी बनी है, यह तो वैज्ञानिकों व खगोलशास्त्रियों ने भी सिद्ध कर दिया है । ब्रह्मांड में सारी व्यवस्था यज्ञ वृत्ति पर ही आधारित है । सूर्य, चंद्र, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सभी यज्ञीय कर्म अपनाकर सृष्टि का पोषण, रक्षण और विकास कर रहे हैं । समुद्र, मेघ, पर्वत, नदियां, वनस्पतियां, वृक्षादि सभी यज्ञीय अनुशासन में बंधे हैं । पशु-पक्षी, कीट-पतंग भी अपनी-अपनी क्षमतानुसार प्रकृति के सहयोग में लगे रहते हैं । समुद्र में अथाह जल भरा है पर वह उसका उपयोग क्या स्वयं ही करता है ? नहीं ! उदारतापूर्वक उसे बादलों को दे देता है । बादल भी उसे स्वयं ही कहां पी जाते हैं । दूर-दूर तक ढोकर ले जाने और बरसाने का श्रम करते हैं । नदी-नाले प्रवाहित होकर भूमि को सींचते और प्राणियों की प्यास बुझाते हैं । वृक्ष एवं वनस्पतियां अपने अस्तित्व का लाभ दूसरों को ही देते रहते हैं । फल, फूल दूसरों के लिए ही पैदा होते हैं । पशुओं के दूध, चर्म, बाल-बच्चों का लाभ मनुष्य को मिलता है । जीवधारियों के शरीर का प्रत्येक अवयव अपने निज के लिए नहीं वरन सारे शरीर को लाभ पहुँचाने के

लिए कार्य करता है । हाथ श्रम करके जो कुछ भी भोज्य पदार्थ मुख में डालता है मुख उस भोजन को क्या स्वयं अपने पास रख लेता है ? वह उसे उदर में पहुंचा देता है । उदर व आंतें भी अपना श्रम लगाकर उस में से पोषक तत्व निकालकर रक्त में मिला देते हैं । रक्त हृदय में पहुंचता है तो वह उसे सारे शरीर में प्रवाहित कर देता है । इसमें हृदय का कितना श्रम लगता है । जीवन काल में करोड़ों बार धड़कता है, अनवरत गति से, एक क्षण का भी विश्राम नहीं । यदि हृदय अपना यह श्रम का त्याग रोक दे तो फिर इस शरीर का क्या बने । त्याग और बलिदान की यह यज्ञीय भावना न हो तो इस संसार का क्या बने । सारी प्रगति विनाश में परिणित हो जाए । तभी तो उपनिषद् में कहा गया है 'यज्ञ ही संसार चक्र का धुरा है ।' धुरा टूट जाने पर गाड़ी आगे कैसे बढ़ सकेगी ।

पूज्यवर ने कहा, "तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ । एक फकीर था । जंगल में एक कुटिया में रहता था । कुटी इतनी छोटी थी कि वह अकेला ही उसमें लेट सकता था । एक रात घनघोर वर्षा हो रही थी । एक व्यक्ति भीगता हुआ वहां आया और बोला 'बाबा क्या मुझे भी बरसात में यहां आश्रय मिल सकता है ।' फकीर बोला 'क्यों नहीं भाई ! मैं इस कुटिया में अकेले ही लेट सकता हूँ पर अब हम दोनों बैठकर आराम से रात काट देंगे ।' कुछ देर बाद एक व्यक्ति और आ गया तथा उसने भी सिर छुपाने को जगह मांगी । फकीर ने कहा 'आओ भाई आओ ! अभी हम दो ही यहां बैठ सकते हैं लेकिन अब हम तीनों खड़े रहकर आराम से रात काट लेंगे ।' बेटा यही यज्ञ का सच्चा दर्शन है । स्वयं कष्ट उठाकर भी दूसरों के सुख में ही अपना सुख देखें । सर्वे भवंतु सुखिनः ।"

"गुरुदेव ! ऐसे किस्से तो काल्पनिक भी हो सकते हैं । कोई प्रत्यक्ष उदाहरण हो तो बताएं ।" हमने अपनी शंका प्रकट की ।

"अरे तो फिर दूर क्यों जाते हो । वृंदावन के राजा महेंद्र प्रताप को तो तुम जानते ही हो ।"

"हां गुरुदेव ! वे आपके पास भी आते थे और तभी हमने उनके

दर्शन भी किए थे ।"

"हां वही ! बेटा राजा महेंद्र प्रताप के कोई संतान नहीं थी । उनकी रियासत में सौ गांव थे , अगाध धन संपत्ति थी पर केवल पति-पत्नी ही उसका उपभोग करने वाले थे । रानी बहुत दु:खी रहती थी । उन्होंने संतान सुख प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किए परंतु ईश्वर की कृपा से वंचित ही रहे । एक दिन राजा महेंद्र प्रताप को इस समस्या का एक अनोखा उपाय सूझा और उन्होंने घोषणा करा दी कि रानी ने पुत्र को जन्म दिया है । यह समाचार सुनते ही नगर में खुशी की लहर दौड़ गई । लोग मंगलगीत गाने लगे और चारों ओर हर्ष व उल्लास का वातावरण छा गया । रानी ने सुना तो सन्न रह गई । राजा से कहा 'यह आपने क्या किया ? मेरे पुत्र हुआ और मुझे ही कुछ पता नहीं । कहीं आप पागल तो नहीं हो गए हैं ।' राजा महेंद्र प्रताप ने सांत्वना देकर कहा 'रानी ! तुम चिंता न करो । हमने बहुत सोच-विचार कर ही यह घोषणा की है । तुम बस देखती जाओ ।' उधर राजा ने राज्य के प्रमुख लोगों को बुलाकर नगर भोज की व्यवस्था करने और सभी राजाओं को आमंत्रित करने के आदेश दिए । उन्होंने यह भी घोषणा की कि भोज के दिन ही नामकरण संस्कार भी होगा और इसके लिए महामना मदनमोहन मालवीय जी को आग्रह सहित निमंत्रित किया । यह सब जानकर नगरवासी प्रसन्नता से नाचने लगे । जोर-शोर से तैयारियां प्रारंभ हो गईं और नियत दिवस पर भव्य भोज का आयोजन हुआ । दूर-दूर से लोग आकर सम्मिलित हुए और अत्यंत सुंदर व्यवस्था व स्वादिष्ट भोजन से तृप्त होकर बधाइयां देते रहे । भोज के पश्चात विशाल पंडाल में नामकरण संस्कार के लिए सभी एकत्रित हुए । सारी जनता और अतिथि राजा अपने स्थान पर बैठ गए । मालवीय जी भी अपने आसन पर विराजमान हुए ।

राजा महेंद्र प्रताप भीतर गए और रानी से पंडाल में चलने को कहा । रानी ने घबरा कर कहा 'महाराज आप क्या कर रहे हैं ? क्यों सबके सामने मुझ दुखियारिन की हंसी उड़ाना चाहते हैं ।' महेंद्र प्रताप ने रानी की बात

पर ध्यान नहीं दिया और स्वयं ही अपने कंधे पर डाले हुए दुपट्टे से रानी की साड़ी में गांठ बांधी और उनको साथ ले कर पंडाल में आ गए । देख कर सारी प्रजा जय जयकार करने लगी । पर तभी यह देख कर कि रानी की गोद में बच्चा तो है ही नहीं, सभी लोग सन्न रह गए । किसी ने दबी जबान में कहा 'रानी बच्चा गोद में क्यों लाती, नौकरानी ला रही होगी ।' तभी राजा महेंद्र प्रताप ने खड़े होकर सभी का अभिवादन किया और बोले 'भाइयों हमारे पास सौ गांव की जागीर है । उनकी सारी आमदनी हम दोनों ही खर्च करते हैं । अब हमने निर्णय किया है कि केवल एक गांव की आय ही अपने प्रयोग में लेंगे । शेष निन्यान्नबे गांवों की आय से यहां एक विद्यालय खोला जाएगा जिसमें गरीब बच्चों के पढ़ने की व्यवस्था होगी । उनके रहने का, खाने का, किताबों का सारा प्रबंध होगा । वे सब हमारे बच्चे होंगे ।' राजा की ऐसी अप्रत्याशित घोषणा सुनकर सभी उपस्थित लोगों की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी । राजा ने मालवीय जी से नामकरण करने का अनुरोध किया । मालवीय जी भी आंसू नहीं रोक पा रहे थे । वे बोले 'राजन ! जिन गरीब बच्चों के लिए आपका इतना असीम प्रेम है उनके इस विद्यालय का नाम हम प्रेम विद्यालय रखते हैं ।' उस विद्यालय में जो बच्चे पढ़ते थे, राजा-रानी के वहाँ पहुँचने पर वे सगी औलाद की तरह उनसे लिपट जाते थे । आज भी वह प्रेम महाविद्यालय मथुरा-वृंदावन मार्ग पर स्थिति है जो राजा महेंद्र प्रताप के त्याग व बलिदान की यज्ञीय भावना का स्वर्णिम उदाहारण है ।"

गुरुदेव ने आगे बताया "जमुनालाल बजाज का नाम तो तुमने सुना है । उन्होंने देश के स्वतंत्रता आंदोलन में उपयोग करने के लिए अपना सारा धन महात्मा गांधी को समर्पित कर दिया था और कहा था कि मैं भी तो आपका बेटा ही हूँ । ईश्वर चंद्र विद्यासागर को ही देखो । उस सस्ते के जमाने में भी उन्हें ४५० रुपये वेतन के मिलते थे । वे ५० रुपये में अपना खर्च चलाते थे और शेष चार सौ रुपये गरीब विद्यार्थियों पर खर्च कर देते थे । वे किसी की फीस भरते, किसी की किताबें लाते, किसी के

कपड़े बनवाते ।"

"बेटा, यह सब क्या है ? त्याग, बलिदान की भावना ही यज्ञ की असली प्रेरणा है । अपने लिए नहीं दूसरों के लिए भी अपनी प्रतिभा और क्षमता का उपयोग करें । यही देव पूजन है, यही दान है ।

देवपूजन से तात्पर्य देवताओं की मूर्तियों की पूजा करना, उनके आगे नाक रगड़ना नहीं है । मूल बात तो यह है कि हम देवताओं के गुणों को अपने भीतर धारण करें, उनके समान उत्कृष्ट आचरण रखें । देवता उसे कहते हैं जो देता है । जो सदा लेने की बात करे वह तो लेवता हुआ, असुर हुआ । आज चारों ओर क्या हो रहा है ? हर व्यक्ति लेने की बात करता है । संसार में जो भी धन-संपत्ति है, सुख-सुविधा के साधन हैं, सबकुछ वह अपने लिए ही चाहता है । आज तो मनुष्य इतने निकृष्ट स्तर तक गिर गया है कि बेटे की शादी में दहेज के लिए लार टपकाता है, भीख मांगता है । उसकी पढ़ाई लिखाई पर किया हुआ खर्च लड़की वालों से मांगता है । उसे शरम भी नहीं आती । इतना ही नहीं, दहेज में यदि कुछ कम मिला तो अपनी पुत्री समान बहू को जलाकर मार डालने में भी नहीं झिझकता । क्या यही देवताओं के लक्षण हैं ? कभी हमारे देश में तेंतीस करोड़ देवता थे, प्रत्येक नागरिक देवताओं के समान आचरण करता था ।

यज्ञ का एक अर्थ देवपूजन इसी से है कि यज्ञ देवता को हम जो भी अर्पण करते हैं उसे वे वायुभूत बनाकर सारे वायुमंडल में बिखेर देते हैं । उसे हजारों गुना बढ़ाकर वापस कर देते हैं । हमें भी यही गुण अपनाना चाहिए । समाज से हमें जो कुछ मिला है, मिल रहा है और आगे भी मिलता रहेगा, उसमें जितना संभव हो वृद्धि करके समाज को वापस करने की बात सोचें । यह हमारा कर्तव्य है । ऐसा करके हम किसी पर अहसान नहीं करते हैं । कोई यह सब करके तो देखे । देवताओं के अनुदान-वरदान की उस पर कितनी वर्षा होती है । निहाल हो जाएगा वह निहाल !

समाज में खूब बोओ, उसका पोषण करो और काटो । 'बोओ और

काटो' यही यज्ञीय मंत्र होना चाहिए । यह नहीं कि 'लूटो और खाओ' । हमें देखो, हम भी तो यही करते हैं । जो कुछ भी है सबको समाज के खेत में बो दिया, समय आने पर काटा और फिर समाज में बांट दिया । इस यज्ञीय भावना से ही तो आज इतना विशाल संगठन खड़ा हो सका है और चारों ओर विचार क्रांति का शंखनाद गूंज रहा है । अब बहुत समय हो गया बाकी बातें बाद में करेंगे ।''

श्रम भी यज्ञ ही है

दूसरे दिन यज्ञ के बाद हमने पुनः गुरुदेव से निवेदन किया ''कल तो आपने यज्ञीय भावना की अत्यंत सुंदर व्याख्या की थी । मैं तो बराबर उसी पर चिंतन करता रहा । कृपया आगे और बताएं ।''

''हां, हां, मुझे तो स्वयं तुम्हें विस्तार से समझाना है जिससे कि जन साधारण को और विशेषकर बच्चों को सही दिशा मिल सके । बेटा, यज्ञ से हमें अनेक प्रकार की प्रेरणाएं मिलती हैं । जब हम यज्ञ में बैठते हैं तो हमारा शरीर गर्म हो जाता है । इसका तात्पर्य है कि हमें गरम जीवन जीना चाहिए, अर्थात श्रमशील बनना चाहिए । बेटे जिस घर में सब लोग श्रम करते हैं वह परिवार सदा सुखी रहता है । जिस देश के नागरिक खूब श्रम करते हैं वह देश भी चतुर्मुखी प्रगति करता है । श्रमदान सर्वश्रेष्ठ दान है-अपने लिए भी और समाज के लिए भी । कभी हमारे देश में स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी कड़ी मेहनत करते थे, श्रम देवता की पूजा होती थी । लोग सुखी, संतुष्ट व संपन्न थे । भारतवर्ष को सोने की चिड़िया कहा जाता था । परंतु आज हमारी जो दुर्दशा हो रही है उसका कारण तो स्पष्ट ही है । कामचोरी, हरामखोरी, आलस्य, प्रमाद हमारे चरित्र में घुस गए हैं । लोग सोचने लगे हैं-

अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम ।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम ॥

पर यह दृष्टिकोण तो ठीक नहीं है । मलूकदास ने तो व्यंग में यह बात कही थी और लोग इसे ही बहाना बनाकर श्रम से जी चुराने लगे हैं ।

आज अन्य देशों को देखो इस श्रम यज्ञ के बल पर ही दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रहे हैं । वहां सभी मन लगाकर खूब मेहनत करते हैं । कोई भी किसी देवता के आगे न तो नाक रगड़ता है न हाथ फैलाता है ।

बेटे, लालबहादुर शास्त्री को तो तुमने देखा ही है । वे भारत के प्रधान मंत्री थे पर अपने कमरे की सफाई स्वयं करते थे । संत विनोबा भावे अपने आश्रम के गहरे कुएं से स्वयं पानी खींचकर पौधों को सींचते थे । स्वामी रामतीर्थ एक बार धर्म प्रचार करते हुए जापान पहुंचे और एक उद्योगपति के निवास पर ठहरे। सायंकाल उनके प्रवचन का कार्यक्रम निश्चित हुआ । दिन में वे उसकी फैक्ट्री देखने गए जहां हजारों व्यक्ति काम कर रहे थे । उन्होंने सारी फैक्ट्री का चक्कर लगाया, एक-एक मशीन के पास जाकर देखा । उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि प्रत्येक कर्मचारी पूरी लगन से अपने कार्य में मग्न था । किसी ने भी उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया । पास जाने पर केवल उनकी ओर देख भर लेते या कुछ पूछने पर नम्रतापूर्वक उत्तर दे देते पर अपने काम में जरा भी व्यवधान न आने देते । शाम को कार्य समाप्त करके वे अपने घर पहुंचे और नहा धोकर परिवार के साथ खाने-पीने, नाचने-गाने में मस्त हो गए । दिनभर जी तोड़ मेहनत के बाद इस प्रकार मनोरंजन से एक दम तरो ताजा हो गए ।

रात्रि को प्रवचन में उन खुशहाल जापानियों को संबोधित करते हुए स्वामी रामतीर्थ ने कहा 'भाइयों ! मुझसे यहां धर्म प्रचार करने को कहा गया है पर मैने देखा है कि यहां का प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह से धार्मिक है । धर्म क्या है ? जीवन यज्ञ में अपनी आहुति देना और यह आहुति श्रम द्वारा ही संभव है । आप सभी उस श्रम की महत्ता को भली-भांति जानते हैं । कोई भी अपने काम से जी नहीं चुराता, पूरी निष्ठा से कार्य के प्रति समर्पित रहता है । यही जीवन यज्ञ का उत्कृष्ट आचरण है, यही सच्चा धर्म है ।'

"यह तो आप ठीक कहते हैं गुरुदेव !" हमने कहा "तभी तो सन् १९४५ में विश्व युद्ध से व एटम बम से तबाह हो जाने के बाद भी जापान आज संसार की सर्वोच्च शक्तियों में से एक है । सचमुच यह वहां के

नागरिकों की जीवन यज्ञ में आहुति का ही परिणाम है । श्रम देवता का वरदान फलीभूत हो रहा है ।''

''हां बेटे, पर हमारे देश में तो आजकल इसका उल्टा हो रहा है । कोई श्रम करना ही नहीं चाहता और रातों रात अमीर बनने के सपने देखता रहता है । जुआ के अड्डों, लाटरी की दुकानों पर भीड़ लगाए रहते हैं पर काम के नाम पर नानी मरती है । बात-बेबात हड़ताल करके काम बंद कर देते हैं । उधर जापान में कभी हड़ताल की जरूरत पड़ती भी है तो कर्मचारी कार्य का समय समाप्त हो जाने पर भी घर नहीं जाते और काम पर लगे रहते हैं । उनकी हड़ताल से काम पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता, उल्टा और अधिक काम होता है । इसी से सारा प्रशासन उनकी समस्याओं का निराकरण करने को जुट जाता है । काश ! इस आदर्श को हमारे भारतवासी भी अपना लेते । पर आज के भ्रष्ट राजनेता कुछ होने दें तब न ।''

संगतिकरण–सामूहिकता

पूज्यवर से हमने कहा ''देवपूजन, त्याग, बलिदान और श्रम का महत्व तो हमारी समझ में अच्छी तरह से आ गया । यज्ञ का एक अर्थ आपने संगतिकरण भी बताया था, उसका क्या तात्पर्य है कृपया समझाएं ।''

''देखो बेटे यज्ञ सामूहिकता का प्रतीक है । अन्य उपासनाएं या धार्मिक कर्मकांड अकेले भी किए जा सकते हैं । घर में सब सोते रहें और आप तीन बजे सुबह उठकर दो घंटे जप कर लें तो किसी को पता भी नहीं चलेगा । परंतु यज्ञ के लिए तो अधिक लोगों का सहयोग लेना पड़ता है । यज्ञ का प्रभाव परिवार क्या पड़ोसियों तथा और व्यापक क्षेत्र में भी होता है । यही संगतिकरण है जिसमें सभी संगठित होकर कार्य करते हैं । यज्ञ आयोजन से सामूहिकता, सहकारिता और एकता की भावना विकसित होती है ।

प्रत्येक शुभ कार्य, प्रत्येक पर्व-त्यौहार, षोडश संस्कार सब यज्ञ के साथ ही संपन्न होते हैं । यज्ञ भारतीय संस्कृति का पिता है । यज्ञ भारत की एक मान्य एवं प्राचीनतम वैदिक उपासना है । धार्मिक एवं भावनात्मक एकता लाने के लिए ऐसे आयोजनों का सर्वमान्य आश्रय लेना सब प्रकार

से दूरदर्शितापूर्ण है । यज्ञ का विधि-विधान जान लेने एवं उसका उद्देश्य-प्रयोजन समझ लेने से ही सभी धार्मिक आयोजनों की मूल आवश्यकता पूरी हो सकती है । आज हमारे त्यौहारों में जो विकृति आ गई है उसका मुख्य कारण यही है कि यज्ञ की इस संगतिकरण की भावना को हम भुला बैठे हैं । होली, दीवाली, दशहरा तथा श्रावणी (रक्षाबंधन) हमारे चारों वर्णों के प्रमुख त्यौहार थे जो इसी यज्ञीय संगतिकरण की, सामूहिकता की शिक्षा से समाज को जाग्रत रखने के लिए निश्चित किए गए थे ।

होली का त्यौहार श्रमिक वर्ग की एकता का, समाज के सामूहिक यज्ञ का ही प्रतीक है । छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब सब एक साथ, एक ही स्थान पर यज्ञ में भाग लेते थे और गले मिलते थे । इस यज्ञ में अपनी बुराइयों की आहुति देते थे । आपस के लड़ाई, झगड़े, क्रोध, वैमनस्य आदि सभी इस होलिका यज्ञ की लपटों में भस्म कर देते थे । परंतु आज तो हम यह सब भूलते जा रहे हैं और होली को भाईचारे का त्यौहार न मानकर केवल एक दूसरे का मुंह काला करने का ही पर्व समझ बैठे हैं । न जाने कहां कहां से रंग, पेंट, तारकोल लाकर एक दूसरे के मुंह पर मलते हैं जिन्हें छुड़ाना भी मुश्किल हो जाता है । इससे अनेक चर्म रोगों का जन्म होता है सो अलग से ।

दीपावली वैश्य वर्ग का त्यौहार है, दीपयज्ञ है । इस दिन व्यापारी वर्ग के लोग आपस में बैठकर विचार विमर्श करते थे कि किस प्रकार सारे समाज की उन्नति के लिए व्यापार का संचालन हो । न कोई अधिक मुनाफा ले और न ही फिजूलखर्ची हो । आज यह भावना तो पूरी तरह से लुप्त हो गई है । हर कोई एकाकी व्यापार करके समाज को अधिक से अधिक लूटने के प्रयास में है । लाखों करोड़ों रुपया हानिकारक चीजों के विज्ञापन पर ही खर्च कर देते हैं । शराब, जुए, लाटरी तक के विज्ञापनों की चारों ओर भरमार है । इन सबका कितना कुप्रभाव समाज पर पड़ रहा है, इस ओर से व्यापारियों ने आंखें ही मूंद ली हैं । उन्हें केवल पैसा ही दीखता है । भले ही उससे उनका स्वयं का स्वास्थ्य चौपट हो जाए और बच्चे भी

आवारा हो जाएं । थोड़ी देर की पैसे की चकाचौंध और मौज मस्ती के आगे उन्हें अपने चारों ओर व्याप्त अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी, भुखमरी-कुछ भी दिखाई नहीं देती, समाज के प्रति वे अपना कोई कर्त्तव्य नहीं समझते ।

उसी प्रकार दशहरा क्षत्रिय वर्ग का त्यौहार था । समाज की रक्षा का दायित्व उनके कंधों पर था । जैसे छतरी हमारी रक्षा धूप व वर्षा से करती है उसी प्रकार क्षत्रिय वर्ग भी हर संकट से समाज की रक्षा करता था । अपने अस्त्र-शस्त्र साफ करके उनकी पूजा करते थे जिससे आवश्यकता के समय उनका उपयोग हो सके । रामलीला तथा अन्य वीरोचित नाटकों, प्रदर्शनों व जलूसों के माध्यम से समाज में वीरता व सुरक्षा की भावना की पुष्टि करते थे । परंतु आज तो हर कोई सड़कों पर हथियार लिए फिरता है और समाज पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता है । गरीब व सीध-साधे लोगों को डरा-धमका कर अपना उल्लू सीधा करता है । अपने देशद्रोही राजनेताओं की कृपा से तो अब देश में नाजायज हथियारों की बाढ़ आ गई है । विदेशों तक से चोरी छुपे हथियार लाए जा रहे हैं । क्या यह सब समाज की सुरक्षा के लिए है ? नहीं, कभी नहीं, यह तो केवल अपनी दादागीरी, गुंडागीरी चमकाने का साधन बन गया है । दशहरे की यज्ञीय भावना, संगतिकरण, सामूहिकता कहीं दिखाई ही नहीं पड़ती ।

श्रावणी तो ब्राह्मण वर्ग का प्रमुख त्यौहार था । उस दिन ब्राह्मण अर्थात श्रेष्ठ कर्म करने वाले व्यक्ति सारे समाज में उत्कृष्ट विचारों को फैलाने का कार्य करते थे । सभी को ज्ञान, दिशा व प्रकाश देते थे । समाज में व्याप्त हर प्रकार की बुराइयों को दूर करने का मार्ग दिखाते थे, समझाते थे और हर प्रकार से 'सर्वे भवंतु सुखिनः' की भावना का परिष्कार करते थे । परंतु आज तो वही ब्राह्मण बने बैठे हैं जिन्होंने ब्राह्मण कुल में जन्म ले लिया है चाहे वह काला अक्षर भैंस बराबर ही क्यों न हों । जो धर्म के नाम पर छदाम भर भी ज्ञान नहीं रखते, रत्ती भर भी काम नहीं करते, जनता को नशा आदि बुरी बातें सिखाते हैं, ऐसे लोग ब्राह्मण बने बैठे हैं । पंडितजी कहलाते हैं । इन धूर्तों को तो केवल माल काटने से ही मतलब रहता है,

कोई चाहे मरे या जिए बस उन्हें तर माल खिलाता रहे । 'खाना खाएं पंडित जी और स्वर्ग जाए यजमान' यह कैसा स्वार्थी धर्म है । हमारे सत्य सनातन धर्म में खराबी ही इसीसे आ गई है कि पाखंडी ब्राह्मणों ने उसे कमाई का रूप दे दिया है । जब तक घर-घर में हम निर्लिप्त और निःस्वार्थ भाव से धर्म की तर्कसंगतता एवं विज्ञान सम्मत मत को नहीं फैलाएंगे, यज्ञ का सच्चा स्वरूप लोगों की समझ में नहीं आ सकेगा ।

बेटे ! पहले यह सामूहिकता की भावना अत्यंत प्रबल थी । परिवार में सभी लोग एक साथ रहते थे । पूरा कुनबा, कुटुंब सुख-दुःख में काम आता था । परंतु आज तो हर कोई अकेला रहना ही पसंद करता है । 'हम दो, हमारे दो' का नारा तो परिवार कल्याण के लिए दिया गया था परंतु उसकी आड़ में लोगों ने मां-बाप, भाई-बहिन सबको दूर फेंक दिया है, बस पति-पत्नी और बच्चे । बच्चों का भी कोई हिसाब नहीं, दो, चार, छह, आठ, रुकने का नाम ही नहीं लेते । कोई उत्तरदायित्व नहीं, कोई जिम्मेदारी नहीं, बस अपने मौज मजे से मतलब । दूसरे किसी के बारे में सोचने का समय ही नहीं है । अरे अपने चारों ओर कम से कम पशु पक्षियों को ही देखो । वे कैसे रहते हैं । जंगलों में कुलांचे भरते हिरणों के झुंड, गाय-भैंसों का चारागाह में साथ-साथ चरना, भेड़-बकरियों का एक साथ मिमियाते हुए सड़क पर जलूस, आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की पंक्ति, सब कितने सुंदर लगते हैं । चींटी-चींटों की संगठनात्मक शक्ति देखो । कैसे एक लकीर में सैनिकों की तरह चलते हैं । बड़े-बड़े कीड़े-मकोड़ों को भी सब मिलकर बिल तक खींच लेते हैं । मधुमक्खियों को देखो, हजारों-लाखों एक साथ एक ही घर में रहती हैं और मिलजुलकर श्रम करती रहती हैं ।"

पूज्यवर की बातें सुनकर मुझे भी एक घटना याद आ गई । पहले मैं गायत्री तपोभूमि के पास रेलवे लाइन तक घूमने जाया करता था । एक दिन रास्ते में एक सांप को टीले पर रेंगता हुआ देखा । उस भयंकर विषधर को देखकर मैं तो डरकर वापस आ गया । दूसरे दिन गया ही नहीं । तीसरे दिन

गया तो देखा कि टीले पर सांप का मृत शरीर पड़ा है और उसके शरीर को हज़ारों चीटियां खा रही हैं । वह सांप शायद धोखे से चींटियों के बिल पर से गुजर गया था । चींटियों ने संगठित होकर उसपर हमला कर दिया और काट-काट कर उसकी जीवन लीला समाप्त कर दी ।

गुरुदेव को मैंने यह घटना सुनाई तो वे बोले "यह उन चींटियों की यज्ञ भावना का ही तो परिणाम है । जब तक संगतिकरण, सामूहिकता, एकता के महत्व को नहीं समझोगे, कुछ भी लाभ होने का नहीं । भौतिक सुख-साधन भले ही बढ़ जाएं, रुपया पैसा आ जाए, सोने चांदी के ढेर लग जाएं पर अकेले उसका उपयोग करना भी संभव नहीं है । सारा पुरुषार्थ इन सबकी सुरक्षा करते ही चुक जाएगा । जबकि सबके साथ मिल बांट कर खाने पीने में जो आनंद है उसका तो बखान ही नहीं हो सकता ।"

उत्कृष्ट दैवी तत्वों का संवर्धन

"यज्ञ का एक और शिक्षण भी है, बल्कि सर्वश्रेष्ठ शिक्षण है-समाज में उत्कृष्ट दैवी तत्वों का संवर्धन ।"

"यह कैसे संभव है ।" हमने जिज्ञासा प्रकट की ।

गुरुदेव ने समझाते हुए बताया "ऋग्वेद में यज्ञाग्नि को पुरोहित कहा गया है, 'अग्निमीले पुरोहितं ।' यह पुरोहित ही मनुष्य में दैवी तत्वों के संवर्द्धन का मार्ग प्रशस्त करता है । उसकी शिक्षाओं पर चलकर लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं । ये शिक्षाएं इस प्रकार हैं-

१. जो कुछ भी बहुमूल्य पदार्थ हम हवन करते हैं उसे अग्नि अपने पास संग्रह करके नहीं रखती, वरन उसे सर्वसाधारण के उपयोग के लिए वायुमंडल में बिखेर देती है । हमें भी इसी प्रकार ईश्वर प्रदत्त विभूतियों का प्रयोग करना चाहिए । हमारा यज्ञ पुरोहित अपने आचरण द्वारा हमें यही सिखाता है । हमारी शिक्षा, समृद्धि, प्रतिभा आदि विभूतियों का न्यूनतम उपयोग हमारे लिए और अधिकतम उपयोग जन कल्याण के लिए होना चाहिए ।

२. जो भी वस्तु अग्नि के संपर्क में आती है अग्नि उसका संस्कार

करके, अपने में आत्मसात करके अपने समान ही बना लेती है । हमें भी इसी प्रकार समाज के पिछड़े, छोटे, दीन, दुःखी, दलित, पीड़ित जो भी व्यक्ति हमारे संपर्क में आएं, उन्हें अपने में आत्मसात करके अपने समान बनाने का आदर्श निभाना चाहिए ।

३. अग्नि की लौ कितना ही दबाव पड़ने पर भी नीचे की ओर नहीं जाती वरन ऊपर की ओर ही उठती है । प्रलोभन, भय कुछ भी क्यों न हों हम अपने विचारों और कार्यों को अधोमुखी न होने दें । विषम परिस्थितियों में भी अपना संकल्प और मनोबल अग्नि शिखा की तरह ऊंचा ही रखें ।

४. अग्नि जब तक जीवित है, ऊष्णता एवं प्रकाश की अपनी विशेषताएं छोड़ती नहीं । उसी प्रकार हमें भी अपनी गतिशीलता की गर्मी और धर्मपरायणता की रोशनी को घटने नहीं देना चाहिए । जीवन भर पुरुषार्थी और कर्त्तव्यनिष्ठ रहना चाहिए ।

५. यज्ञाग्नि का अवशेष मस्तक पर लगाते हुए हमें सीखना चाहिए कि मानव जीवन का अंत मुट्ठी भर भस्म के रूप में ही शेष रह जाता है । अपने इस अंत को ध्यान में रखते हुए जीवन के सदुपयोग का प्रयत्न करना चाहिए ।

इसी प्रकार की अनेक शिक्षाएं हमें यज्ञ पुरोहित से मिलती हैं, जो हमारे भीतर उत्कृष्ट दैवी तत्वों का संवर्धन करती रहती हैं । यज्ञीय धर्म क्रियाओं में भाग लेने से आत्मा पर चढ़े हुए कषाय कल्मष दूर होते हैं । फलस्वरूप उसमें तेजी से ईश्वरीय प्रकाश जागता है । यज्ञ से आत्मा में ब्राह्मणत्व, ऋषित्व की वृद्धि दिन प्रतिदिन होती जाती है और आत्मा को परमात्मा से मिलाने का परम लक्ष्य बहुत सरल हो जाता है । आत्मा और परमात्मा को जोड़ देने का, बांध देने का कार्य यज्ञाग्नि द्वारा ऐसे ही होता है, जैसे लोहे के दो टूटे हुए टुकड़ों को वेल्डिंग की अग्नि जोड़ देती है ।

यज्ञ के प्रभाव से मनोभूमि उच्च, सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनती है । महिलाएं, छोटे बालक एवं गर्भस्थ शिशु विशेष रूप से यज्ञ शक्ति से

अनुप्राणित होते हैं । उन्हें सुसंस्कारी बनाने में यज्ञीय वातावरण की समीपता बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है । दुर्बुद्धि, कुविचार, दुर्गुण एवं दुष्कर्मों से विकृत मनोभूमि में यज्ञ से भारी सुधार होता है । इसी से यज्ञ को पापनाशक भी कहा गया है । यज्ञीय प्रभाव से सुसंस्कृत हुई विवेकपूर्ण मनोभूमि का प्रतिफल जीवन के प्रत्येक क्षण को स्वर्गीय आनंद से भर देता है, इसलिए यज्ञ को स्वर्ग देने वाला भी कहा गया है ।

हम यज्ञ आयोजनों में लगें, परमार्थ परायण बनें और जीवन को यज्ञ परंपरा में ढालें । हमारा जीवन यज्ञ के समान पवित्र, प्रखर और प्रकाशवान हो । गंगा स्नान से जिस प्रकार पवित्रता, शांति, शीतलता, आर्द्रता को हृदयंगम करने की प्रेरणा ली जाती है, उसी प्रकार यज्ञ से तेजस्विता, प्रखरता, परमार्थ परायणता एवं उत्कृष्टता का प्रशिक्षण मिलता है । जिस प्रकार हम घी, शक्कर, मेवा, औषधियां आदि बहुमूल्य वस्तुएं यज्ञ प्रयोजनों में होम करते हैं, उसी तरह अपनी प्रतिभा, विद्या, बुद्धि, समृद्धि, सामर्थ्य आदि को भी विश्व कल्याण हेतु समर्पित करना चाहिए । इस नीति को अपनाने वाले व्यक्ति न केवल समाज का बल्कि अपना भी सच्चा कल्याण करते हैं । संसार में जितने भी महापुरुष, देव मानव हुए हैं सभी ने यही रीति-नीति अपनाई है । जो उदारता, त्याग, सेवा और परोपकार के लिए कदम नहीं बढ़ा सकता, उसे जीवन की सार्थकता का श्रेय और आनंद भी नहीं मिल सकता ।

मनुष्य को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि वह भगवान का पुत्र है, परमेश्वर का राजकुमार है । उसे वही कार्य करने चाहिए जो भगवान ने किए हैं । अपने दिमाग में सदैव ऊँचे विचारों को ही स्थान दें । कुविचार, निकृष्ट, गंदे, घटिया विचार यदि कहीं से आते हों तो उन्हें ऐसे दुत्कार कर दूर भगाएं जैसे चोरों को डंडों से पीटकर भगाते हैं । हमें अपने परिवार के प्रति, माता-पिता के प्रति श्रेष्ठ विचार ही रखने चाहिए । उनका हम पर कितना ऋण है । समाज का कितना ऋण है । समाज ने हमें बोलना सिखाया, चलना सिखाया, रहने के तौर तरीके सिखाए । समाज ने

ही स्कूल-कालेज खोलकर हमें पढ़ने-लिखने की सुविधा दी है, ऊंचे से ऊंचे स्तर का रहन-सहन दिया है। उस समाज के प्रति भी उत्कृष्ट विचार रखें, उसकी प्रगति की बात ही सोचें।

बेटा! यह सोचना गलत है कि देने से घटता है, देने से तो कई गुना बढ़ता है। भेड़ ऊन देती है तो उसके शरीर पर दुबारा ऊन आ जाती है। वह फिर देती है, फिर आ जाती है। और रीछ, वह किसी को अपने बालों को छूने नहीं देता तो उसके वही रूखे-सूखे बाल ही सदैव बने रहते हैं। कुआं पानी देता है तो भीतर से और पानी आ जाता है। जिस कुएं का पानी कोई नहीं पीता वह पानी सड़ जाता है। उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। पशु भी उसका पानी नहीं पीते। हमें ही देखो। हमने अपना सारा धन समाज के काम में लगा दिया। आज असंख्य गुना बढ़कर हमें मिल रहा है। आंवलखेड़ा में स्कूल व आश्रम, गायत्री तपोभूमि, शांतिकुंज, ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, देश भर में फैली हजारों शक्ति पीठें। करोड़ों की, अरबों की संपत्ति है।

पूज्यवर ने आगे कहा "अब मैं तुम्हें कुछ दृष्टांत देकर समझाऊंगा कि यज्ञीय भावनाओं से उत्कृष्ट दैवी तत्वों का संवर्धन किस प्रकार होता है और उससे लोक-परलोक कैसे सुधरता है।"

हमने भी प्रसन्न होते हुए कहा "हाँ गुरुदेव! आपने इतनी अच्छी तरह से समझाया है कि यज्ञीय भावनाओं का महत्व पूरी तरह से स्पष्ट हो गया। अब दृष्टांतों से इसकी पुष्टि भलीभांति हो सकेगी।"

बेटे तुमने गुजरात के जलाराम बापा का नाम तो सुना है। वे एक साधारण किसान थे, थोड़ी सी जमीन थी उसी में खेती करते थे। जो भी राहगीर आता उसे आश्रय देते। उनकी पत्नी रोटी बनाती और सबको खिलाती रहती। यह क्रम्म जलाराम अनवरत चलाते रहे। इस यज्ञीय भावना के कारण वे त्याग और बलिदान की मूर्ति बन गए। लोग उनके जीवन काल में ही उनकी पूजा देवता के समान करने लगे। वीरपुर में उनका मंदिर बना है। वहां हजारों-लाखों व्यक्ति रोज आते हैं और मंदिर के भोजनालय में

प्रसाद ग्रहण करके ही जाते हैं । हर ओर जलाराम की जय जयकार ही सुनाई देती है । लोग अपने होटलों, दुकानों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों के नाम भी उन्हीं के नाम पर रखते हैं । यह है यज्ञीय भावना से प्राप्त उत्कृष्टता ।

संत रामदास व संत कबीर दास मित्र थे । दोनों ही प्रकांड विद्वान और समाज की पीड़ा को दूर करने में सदैव तत्पर । एक बार संत रामदास जी कबीरदास जी के घर गए । खूब ज्ञान चर्चा हुई । जब चलने लगे तो कबीरदास जी ने एक रुपया दे कर कहा कि संत शिरोमणि आप इस रुपये से अपनी सारी जमात को भोजन करा देना । रामदास जी वहां से चले तो रास्ते भर सोचते रहे कि यह कैसे संभव हो सकेगा । वह बहुत ही सस्ते का जमाना था फिर भी उनकी जमात में हजारों व्यक्ति थे, रोज उनका भोजन बनता था । एक रुपये में क्या होता ? फिर उन्हें एक तरकीब सूझी । एक रुपये में घी और जीरा खरीद लिया । सस्ता जमाना था, कई सेर घी आ गया । जहां जमात का भोजन बनता था वहां इस घी व जीरे को गरम करके दाल में बघार लगा दिया । उस दिन पूरी जमात ने भोजन किया और दाल के स्वाद की प्रशंसा की । एक रुपये के यज्ञ का लाभ हजारों व्यक्तियों को मिल गया ।

फिर कुछ दिन बाद कबीरदास जी घूमते हुए संत रामदास जी के आश्रम में पहुंचे । चर्चा के बाद जब चलने लगे तो संत रामदास जी ने उन्हें एक चवन्नी दी और कहा कि आप इससे सारे विश्व को भोजन करा देना । कबीरदास जी बड़े असमंजस में पड़े । सोचते रहे कि क्या करें, कैसे करें कि बात रह जाए । विचार करने पर इस असंभव सी लगने वाली समस्या का समाधान भी उन्हें मिल गया । बेटे ! तुम समझ सकते हो कि उन्होंने कैसे चवन्नी (पच्चीस पैसे) से सारे विश्व को भोजन कराया ।''

''गुरुदेव, हमारी समझ में तो कोई भी तरकीब नहीं आ रही है ।'' हमने अपना सिर खुजाते हुए कहा ।

''अरे बेटे, जानते हो कबीरदास ने क्या किया । चवन्नी (पच्चीस पैसे) में वह बाजार से घी, सामग्री, मिष्ठान्न आदि खरीदकर ले आए और

एक यज्ञ कर दिया । सभी पदार्थ यज्ञाग्नि में वायुभूत होकर सारे वायुमंडल में फैल गए । सारे विश्व में वह वायु फैल गई और सभी जीवधारियों ने सांस के साथ उसे ग्रहण किया । इस प्रकार यज्ञ से सारे विश्व का भोजन हो गया और वह भी एक चवन्नी में ।

यह दृष्टांत मैंने तुम्हें इसलिए सुनाया है कि यज्ञ वह विधा है जिसके माध्यम से अमीर गरीब सभी लोक मंगल के कार्य कर सकते हैं । छोटे से छोटा श्रम और पुरुषार्थ भी अपना महत्व रखता है । रामचंद्रजी ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए पुल का निर्माण कराया था । उसमें जहां बड़े-बड़े पत्थर समुद्र में डाले जा रहे थे वहीं एक गिलहरी भी अपनी पूंछ के बालों में बालू भरकर लाती और समुद्र में डाल देती थी । अब तुम्हीं बताओ, उस पुल के बनाने में नल-नील के पुरुषार्थ से उस गिलहरी की यज्ञीय भावना किस मायने में कम थी । मैं तो कहूंगा कि वह उनसे भी उत्कृष्ट ही थी ।

संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सभी के जीवन यज्ञीय भावना के अनुपम उदाहरण हैं । राम, कृष्ण, बुद्ध, गौतम, गांधी, सुकरात सभी का यज्ञमय जीवन रहा है । संत तुकाराम की पत्नी उनसे बहुत झगड़ा करती थी । एक बार संत खेत पर से गन्ने का एक गट्ठर लेकर घर आ रहे थे । रास्ते में जो भी उनसे गन्ना मांगता उसे वे एक गन्ना दे देते । परिणाम यह हुआ कि जब घर पहुंचे तो उनके पास केवल एक गन्ना ही शेष रहा । यह देखकर उनकी पत्नी बहुत क्रोधित हुई और उस गन्ने को तुकाराम की पीठ पर दे मारा । गन्ने के दो टुकड़े हो गए । तुकाराम ने हंसते हुए दोनों टुकड़े उठाए और अपनी पत्नी को धन्यवाद देते हुए कहा 'तू और मैं दो थे और गन्ना एक ही था । तूने अच्छी तरह उसके दो बराबर टुकड़े कर दिए । अब एक टुकड़े को तुम चूसो और एक मैं चूसता हूँ ।' उनकी पत्नी बहुत शर्मिंदा हुई और उसने लड़ाई-झगड़ा करना छोड़ दिया । जैसे यज्ञाग्नि अपने पास की वस्तु को अपने जैसा ही बना देती है उसी तरह तुकाराम ने अपनी पत्नी को भी सहनशील और सभ्य बना दिया ।

आर्य समाज के स्वामी श्रद्धानंद जी थे । वे थानेदार के लड़के थे

और बचपन में खराब संगत के कारण शराब पीने लगे थे । एक रात वे शराब के नशे में धुत्त होकर घर आए और कमरे में उल्टी करके बेहोश हो गए । उनकी पत्नी ने उन्हें संभाला, साफ-सफाई की और बिस्तर पर सुला दिया । सुबह उनका नशा उतरा तो उन्होंने देखा कि रात का खाना अधबना पड़ा है । पत्नी से पूछा कि उसने रात खाना नहीं खाया तो वह बोली मैं कैसे खाती । आपकी दशा ठीक नहीं थी । इस बात का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शराब व अन्य सभी दुर्व्यसन छोड़ दिए और स्वामी श्रद्धानंद के रूप में प्रसिद्ध हुए । यज्ञीय भावना के अन्य अनेक उदाहरण मिल जाएंगे । उन्हें समझने और अपने जीवन में उतारने की आवश्यकता है ।''

गुरुदेव ने उस दिन की बात वहीं समाप्त की और कहा कि अब दूसरे दिन आगे बताएंगे । मैं उनकी बताई हुई बातों पर चिंतन-मनन करता रहा तभी मुझे भरतपुर की एक घटना का स्मरण हो आया । बहुत पहले जब मैं भरतपुर में रहता था तो पड़ोस में एक लड़के की शादी हुई । उसकी बहू बहुत ही सुशील थी पर सास सदा उससे लड़ती रहती थी । बात बे बात उसे गाली देती व ताने देती थी लेकिन बहू कभी भी उफ तक न करती । एक दिन उसकी सहेली आई और बहू के कमरे में दोनों बातें करने लगीं । उसकी सहेली ने कहा 'सुना है कि तेरी सास तुझे बहुत परेशान करती है । तू तो बहुत सीधी है, कह तो मैं उसे एक ही दिन में ठीक कर दूं ।' इस पर बहू ने कहा 'नहीं-नहीं, तूने गलत सुना है । मेरी सास तो बहुत अच्छी हैं । मेरी मां से भी ज्यादा मेरा ध्यान रखती हैं । कभी मुझसे गलती हो जाए तो प्यार से समझा देती हैं । तू जरा भी चिंता न कर ।' उसकी सास दोनों की बातें पर्दे के पीछे खड़ी होकर सुन रही थी । बहू की अपने प्रति ऐसी श्रद्धा देखकर वह पानी-पानी हो गई और उस दिन से उसका स्वभाव पूरी तरह बदल गया ।

यज्ञ से भौतिक लाभ

दूसरे दिन गुरुदेव ने स्वयं ही हमें बुलाकर चर्चा का क्रम आगे बढ़ाया । ''देखो बेटे, अब तक हमने तुम्हें यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप से

परिचित कराया है, उसका दर्शन समझाया है । यज्ञ का अर्थ देव पूजन, संगतिकरण, दान, तप, त्याग, बलिदान की भावना का महत्त्व बताया है । इनके बिना यज्ञ करने का कोई मतलब ही नहीं है । सच पूछो तो क्रियात्मक यज्ञ करना, हवन कुंड में समिधा जलाकर सामग्री व घी आदि डालना उतना आवश्यक भी नहीं है जितना कि यज्ञीय भावना से कार्य करना । जितने भी महापुरुष हुए हैं, जिसने भी संसार में उन्नति की है, प्रगति की है, सभी अपने समय के प्रत्येक पल की आहुति जीवन यज्ञ में डालते रहे हैं । यह भावनात्मक यज्ञ ही सारे सृष्टिक्रम का नियंता है । वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक प्रगति का सारा आधार यज्ञीय प्रवृत्तियों पर निर्भर है ।

यज्ञ का एक भौतिक पक्ष भी है जो कि कम महत्वपूर्ण नहीं है । यज्ञ मात्र श्रद्धा नहीं, एक अद्‌भुत विज्ञान भी है । समिधाओं और सामग्री के जलने से ताप, प्रकाश पैदा होता है । रासायनिक परिवर्तन होते हैं । इस परिवर्तन से मूल द्रव्यों के गुण-धर्म भी बदल जाते हैं । द्रव्यों के ज्वलन से नए पदार्थों की उत्पत्ति होती है । अनेक ठोस पदार्थ जलने से और आपस की रासायनिक क्रिया से नए रूप धारण करके वाष्पीय अवस्था में बदल जाते हैं । इस भाप या यज्ञ धूम्र में असंख्य सूक्ष्म कण होते हैं जो वायुमंडल में बिखर जाते हैं ।"

"यह कैसे संभव हो सकता है गुरुदेव" हमने अपनी शंका जताई ।

"अरे इतना भी नहीं समझते । अच्छा बताओ तुमने मिर्च देखी है न । यहां पास में एक मिर्च रख दें तो तुम पर उसका प्रभाव पड़ेगा क्या ? नहीं कुछ भी नहीं होगा । जैसे लोटा, गिलास रखा है वैसे ही मिठाई या मिर्च रखी है । परंतु यदि उस मिर्च को मुंह में रखकर चबाओ तो क्या होगा ? तुम सीसी करने लगोगे । स्वादेंद्रियों पर उसका प्रभाव पड़ेगा । लेकिन केवल खाने वाला ही प्रभावित होगा । मुझे या अन्य किसी को कोई अंतर नहीं पड़ेगा । अब इसी मिर्च को आग में डाल दो, फिर देखो तमाशा । आश्रम के भीतर क्या, सड़क पर चलने वाले भी खांसने लगेंगे । लोगो की आंखों से पानी बहने लगेगा । जिधर भी वायु मिर्च के जले हुए तत्वों को ले जाएगी

उधर ही सैकड़ों व्यक्तियों को प्रभावित कर देगी । अब बताओ इस अग्नि संस्कार से मिर्च की शक्ति असंख्य गुना बढ़ गई या नहीं ?

"हां गुरुदेव, यह तो ठीक है ।" हमने समर्थन में सिर हिलाया ।

"ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं । तुमने देखा है दिवाली पर करोड़ों रुपये की आतिशबाजी फूंक दी जाती है । यह सब क्या है ? कुछ गंधक, पोटाश व अन्य पदार्थ उसमें ठोस अवस्था में रखे जाते हैं । उनसे कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता । पर जब उसमें आग लगाते हैं तो रासायनिक क्रिया होने से गैस बनती है और उसकी शक्ति से भयंकर आवाज के साथ विस्फोट होता है । पटाखे की सारी शक्ति अग्नि संस्कार से ही उत्पन्न होती है । आज हमारा यही तो दुर्भाग्य है कि हम आतिशबाजी के इस यज्ञ पर करोड़ों अरबों रुपये हंसते-हंसते फूंक देते हैं और वास्तविक यज्ञ के लिए दस-बीस रुपयों के खर्च को फिजूलखर्ची कहते हैं । अरे, यदि जरा भी विवेक से काम लें और आतिशबाजी का खर्च बंद कर दें तो साल दो साल में ही देश का सारा विदेशी कर्जा पट जाए, लेकिन क्या किया जाए । हमारी अकल पर तो पत्थर पड़े हैं । हम तो यज्ञ को ही फिजूलखर्ची समझेंगे और डंके की चोट पर समझेंगे । ठीक है भाई समझो, अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने में तुम्हें मजा आ रहा है तो कोई क्या कर सकता है ।"

इतना कह कर गुरुदेव कुछ क्षण को रुक गए । उनके मन की व्यथा का आभास करते हुए हम भी चुप ही रहे । कुछ देर बाद वे आगे बताने लगे ।

"हां तो मैं बता रहा था कि यज्ञ से असंख्य भौतिक लाभ होते हैं । पर्यावरण का संतुलन होता है । स्वास्थ्य संवर्धन और रोग निवारण का कार्य भी यज्ञ से ही संभव है । अनेक यज्ञ विशेष प्रभाव के लिए होते हैं जैसे राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, पुत्रेष्ठि यज्ञ आदि । हमारे ऋषियों मनीषियों ने गहन खोज के आधार पर यज्ञ विज्ञान को स्थापित किया था । समिधाओं के चुनाव और हवन सामग्री के गुण विश्लेषण पर विशेष ध्यान दिया जाता है । यज्ञ कुंड की आकृति का भी अपना अलग महत्व होता

है । यह सब गहन शोध का परिणाम है । इसके विस्तार में जाने का अभी न तो समय ही है और न आसानी से तुम समझ ही सकोगे । अब हम तुम्हें पर्यावरण के बारे में बताते हैं ।''

यज्ञ और पर्यावरण

''आज सारा संसार पर्यावरण की विषम समस्या से ग्रस्त है । सभी जीवधारी मल, मूत्र, श्वास के द्वारा तो गंदगी फैलाते ही हैं अब औद्योगीकरण के फलस्वरूप तो गंदगी की पराकाष्ठा ही हो गई है । न जाने कितना डीजल, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, कोयला, लकड़ी हर समय जलता रहता है । मनुष्य अपने सुख सुविधा के साधन बढ़ाता जा रहा है और उसी अनुपात में पर्यावरण का भी सत्यानाश कर रहा है । मोटरकारों, बसों से सड़कें पटी पड़ी हैं । कहते हैं कि अमरीका में स्थिति यह है कि जितनी देर में वहां एक बच्चा पैदा होता है उतनी देर में दो कारें बन कर तैयार हो जाती हैं । अपने देश में भी यही हालत होती जा रही है । आज तो कोई अपने पैरों से चलना ही नहीं चाहता । हर एक को पैदा होते ही गाड़ी या स्कूटर चाहिए । बीड़ी, सिगरेट के धुंए से कितना प्रदूषण होता है, इसका तो अनुमान लगाना भी कठिन है ।

पृथ्वी पर जीवन बना रहे, इसके लिए शुद्ध वायु और जल तो मुख्य रूप से आवश्यक हैं । आज चारों ओर व्याप्त गंदगी के कारण न शुद्ध वायु मिलती है और न ही पानी ही उपलब्ध हो पा रहा है । लोग कहते हैं कि शुद्ध वायु के लिए पहाड़ों पर जाओ, हिमालय पर जाओ । पर अब तो वहां भी पर्यावरण की समस्या अपने खूनी पंजे फैला रही है । जल स्रोत प्रदूषित हो रहे हैं । गंगा जो संसार की पवित्रतम नदी थी उसीकी गंदगी साफ करने के लिए अरबों–खरबों रुपया व्यय हो रहा है और वह भी कर्जा लेकर । जैसे मनुष्य का मन गंदा हो रहा है वैसे ही इसके चारों ओर व्याप्त वातावरण भी बुरी तरह प्रभावित हो रहा है ।''

''पर गुरुदेव, यज्ञ से इस सबका क्या संबंध है । यज्ञ के धुंए से तो और प्रदूषण होगा । जलने से कार्बन डाई ऑक्साइड गैस भी तो

फैलेगी ।" हमने शंका की ।

"वही तो बता रहा हूँ । यज्ञ से पर्यावरण को शुद्ध करना सबसे आसान है । तुम अक्सर अपने कमरे में अगरबत्ती जलाते हो । क्यों ? अगरबत्ती में लगे हुए पदार्थों के जलने से धुंआ निकलता है । जैसे पदार्थ उसमें लगे होते हैं उसी के अनुसार सुगंध फैलती है । कमरे की दूषित वायु शुद्ध हो जाती है । यह यज्ञीय प्रक्रिया का सूक्ष्म रूप है । इसी प्रकार जब बड़े यज्ञ कुंड में समिधाएं व सामग्री के जलने से जो धुंआ निकलता है तो वह कितने विस्तृत क्षेत्र की वायु को शुद्ध व सुगंधित कर देगा, इसका तुम स्वयं ही अनुमान लगा लो । एक छोटी सी अगरबत्ती एक कमरे के लिए पर्याप्त होती है तो यज्ञ कुंड का धुंआ कितना विस्तार लेगा, इसका हिसाब लगाओ । यज्ञ कुंड से उठा हुआ धुंआ पवन के झोंकों से विस्तृत क्षेत्र में चारों ओर फैलता है और उसमें पदार्थों के जो तत्व सूक्ष्म कणों के रूप में होते हैं वे भी चारों ओर फैल जाते हैं । जीवधारियों के शरीर में सांस के साथ ये तत्व प्रवेश करते हैं और साथ ही पेड़ पौधे भी उनसे प्रभावित होते हैं । हवन की इस गैस में अनेक उपयोगी रासायनिक तत्व होते हैं ।

यह तो कोरा भ्रम ही है कि हवन के धुंए में कार्बन डाई ऑक्साइड या अन्य कोई विषाक्त गैस होती है । हवन गैस इस दोष से रहित है । कदाचित कुछ विषैला अंश रहे भी तो घृत का वाष्पीय प्रभाव उसे नष्ट करके लाभकारी बना देता है । इसमें स्थित अनेक रासायनिक व सुगंधित पदार्थ हर प्रकार के प्रदूषण को दूर करके पर्यावरण को शुद्ध बना देते हैं ।

वायु शुद्धि के अतिरिक्त हवन गैस से स्थान, जल, आदि अनेक तत्वों की शुद्धि भी हो जाती है । यह गैस बादलों के साथ मिलकर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर बरसती है और उसके द्वारा जल स्रोत निर्मल हो जाते हैं, वनस्पतियां परिपुष्ट होती हैं । कृषि में भी हवन गैस बहुत लाभदायक सिद्ध होती है । इससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है ।

"क्या ऐसा भी हो सकता है ?" हमने आश्चर्य से पूछा ।

"अरे क्यों नहीं हो सकता । आज मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के

लिए तरह-तरह की रासायनिक खाद डालते हैं, यूरिया, फास्फेट और न जाने क्या-क्या । पर क्या इनसे सचमुच लाभ होता है ? नहीं, उल्टे कुछ वर्षों में उनके प्रभाव से जमीन बंजर होने लगती है । पहले गोबर की व अन्य सड़ी पत्तियों की खाद देते थे । इस प्राकृतिक खाद से जमीन में जो भी अन्न, साग-भाजी, पैदा होते थे वे कितने स्वादिष्ट व पौष्टिक होते थे ।''

'सो तो है गुरुदेव !'' हमने कहा ।

''यज्ञ विधान को वनस्पति जगत की शुद्धि और परिपुष्टि का आधार कहा जाता है । पृथ्वी सदा वायु से गंध का शोषण करके वायु को निर्गंध करती रहती है । यज्ञ का धुंआ गंध के कारण भारी होता है और पृथ्वी के धरातल पर ही बहता है । इस प्रकार यज्ञ से हवन द्वारा बने अभीष्ट तत्वों व गंध को यज्ञ प्रदेश की पृथ्वी सोख लेती है । इससे पृथ्वी की कृषि उपज कई गुना बढ़ जाती है और पौष्टिक भी हो जाती है ।

दूसरी ओर वैज्ञानिक परीक्षणों से यह तो सिद्ध हो गया है कि रासायनिक खाद डालने से मिट्टी में जो उर्वरा शक्ति विनाशक कीटाणु होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं । इससे पोषक कीटाणुओं की वृद्धि हो जाती है और फलस्वरूप मिट्टी की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है । पर इसमें दोष यह है कि एक बार मिट्टी में डाल देने के बाद उसे अलग नहीं किया जा सकता और धीरे-धीरे उस खाद के प्रभाव से उर्वरावर्धक कीटाणुओं का भी नाश होने लगता है तथा वह जमीन कुछ वर्षों में बंजर हो जाती है । यज्ञ से पैदा होने वाली गैसों में ऐसे कोई भी विषैले तत्व नहीं होते । वैज्ञानिकों ने कुछ समय तक इस गैस को मिट्टी पर प्रवाहित करके परीक्षण किए तो पाया कि इससे उसकी उर्वरा शक्ति बहुत बढ़ जाती है और पोषक अणुओं को बढ़ाने वाले आवश्यक तत्व मिट्टी में भर जाते हैं । इन्हीं तत्वों के कारण यज्ञीय गैसों से प्रेरित वर्षा अन्न, वनस्पतियों तथा औषधियों को निर्मलता और पुष्टि प्रदान करती है । पुरातन काल में जब देश में जगह-जगह दैनिक एवं विशेष यज्ञ आयोजित होते रहते थे तो यज्ञ धूम्र से परिपुष्ट बादलों से वर्षा भी सत्वगुणों से भरी होती थी । उससे अन्न व औषधियों

में भी वे गुण ओत-प्रोत हो जाते थे । अन्न का सूक्ष्म अंश ही मन को पुष्ट करता है । 'जैसा अन्न वैसा मन ।' अत: प्राचीन यज्ञीय संस्कृति के निवासियों का मन भी सात्विक निर्मलता से अनुप्राणित रहता था ।

आज चारों ओर पर्यावरण में विसंगतियां फैल रही हैं । प्रदूषण की चीख पुकार मची है, हर कहीं विष भर रहा है । कहते हैं कि प्रदूषण के कारण वायुमंडल की ओजोन पर्त तक फट रही है और सूर्य की बढ़ी हुई गर्मी से कुछ वर्षों में पृथ्वी नष्ट हो सकती है । सब ओर प्राकृतिक असंतुलन फैल रहा है । ऐसे में यज्ञ की उपयोगिता पहले से कहीं बढ़ चढ़ कर है । तुम तो जानते ही हो लोहे को लोहा काटता है, कांटे को कांटा ही निकलता है । विचारों की काट विचारों से ही होती है । तभी तो विचार क्रांति अभियान में सद्विचारों को फैलाकर कुविचारों को काटा जा रहा है । इसी प्रकार धुंए को भी धुंए से ही शुद्ध किया जा सकता है । चारों ओर विषैली गैसें वायुमंडल में फैली हुई हैं । उन्हें यज्ञ धूम्र से ही शुद्ध किया जा सकता है । और कोई मार्ग नहीं है ।"

"आगे फिर कभी" कह कर गुरुदेव ने उस दिन की चर्चा को विराम दे दिया ।

यज्ञ से स्वास्थ्य संवर्धन और रोग निवारण

अगले दिन हमने गुरुदेव से आग्रह किया कि यज्ञ से चिकित्सा कैसे हो सकती है, इस बारे में भी कृपया समझाएं ।

पूज्यवर ने बताया "भारतीय संस्कृति में बलवर्धन पर विशेष जोर दिया गया है । गर्भ के शिशु से लेकर मृत्यु पर्यंत बराबर उसके स्वास्थ्य एवं पुष्टता का ध्यान रखा जाता है । ब्रह्मचर्य आश्रम का विधान भी इसी दृष्टिकोण से किया गया था कि २५ वर्ष की आयु तक हर प्रकार से शरीर को इतना बलवान बना दिया जाए कि जीवन पर्यंत वह रोगग्रस्त हो ही न सके । फिर भी यदि कभी रोग उत्पन्न हो ही जाए तो उसकी चिकित्सा का भी विधान था । यजुर्वेद में, चरक संहिता में, आयुर्वेद शास्त्र में स्वास्थ्य संवर्धन और रोग निवारण पर व्यापक चर्चा की गई है । लगभग

सभी रोगों के उपचार की विधि उनमें है । धूम्र चिकित्सा उसका एक विशेष अंग है जिसमें विभिन्न औषधियों के धुएं से चिकित्सा की जाती है । भाप से इलाज होता है ।

"पर यह सब तो बाद में । पहले स्वास्थ्य संवर्धन पर ध्यान दो । हमारे शास्त्रों ने इस पर विशेष बल दिया है और इसीलिए दैनिक यज्ञ का विधान किया है । इससे यज्ञशाला में बैठने वालों तथा आसपास रहने वालों पर स्वस्थ प्रभाव पड़ता है । यज्ञीय ऊष्मा से शरीर गरम होता है और रक्त संचार बढ़ जाता है । उसी के साथ यज्ञ धूम्र की चादर शरीर को ढक लेती है । ऐसे में अनेक पौष्टिक व सुगंधित पदार्थ सांस के द्वारा एवं लाखों रोम-छिद्रों के द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं । चिंतन, चरित्र, आहार-विहार की पवित्रता के साथ-साथ यह यज्ञोपचार प्रकारांतर से सर्वतोमुखी सुख, शांति व स्वास्थ्य का पथ प्रशस्त करता है । इस प्रक्रिया से शरीर को पुष्ट करके इतना सबल बना लिया जाता है कि रोग का प्रभाव ही न हो सके ।

इसका दूसरा चरण है कि रोग उत्पन्न होने की संभावना की पहले से ही रोक थाम कर ली जाए । यह प्रयोजन भी यज्ञीय ऊर्जा से पूरा हो जाता है । जहां यज्ञीय ताप शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाता है वहीं वह यज्ञ से प्रभावित क्षेत्र के रोग कीटाणुओं को भी भस्म कर देता है, कीट पतंगों को समाप्त कर देता है ।"

"पूज्यवर यह तो हिंसा हुई । क्या यज्ञ से इस प्रकार कीटाणुओं व कीट पतंगों की हत्या नहीं होती ।" हमने प्रश्न किया ।

गुरुदेव हंसे और बोले "अरे नहीं बेटा, इसमें हिंसा कहां है । गीता में भी भगवान ने स्पष्ट कहा है 'परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम।' साधु प्रकृति के श्रेष्ठ व्यक्तियों की सुरक्षा एवं दुष्ट व्यक्तियों का नाश करने के लिए ही वे समय-समय पर पृथ्वी पर अवतार लेते हैं । जब असुर, पापी, दुष्ट व्यक्तियों की हत्या करना हिंसा नहीं है तो रोग फैलाने वाले कीटाणुओं और कीट-पतंगों को यज्ञीय ऊर्जा से नष्ट करने में हिंसा कहां से हुई ।

"सो तो ठीक है गुरुदेव ! पर यज्ञ के धुएं से तो रोगों का पूरा बचाव

नहीं हो सकता । आजकल तो बच्चों को पैदा होते ही तरह-तरह के टीके व इंजेक्शन लगाने की परंपरा है ।" हमने अपनी बात रखी ।

"वह तो विदेशी औषधि विज्ञान की देन है जो कि पिछले तीन-चार सौ वर्ष में ही विकसित हुआ है । पर हमारे यहाँ हजारों वर्षों से रोग प्रतिरोधन का यज्ञीय विधान प्रचलित है । आजकल जो टीके लगाए जाते हैं वे पहले शरीर में हल्का रोग उत्पन्न करते हैं जिससे कि इस रोग से लड़ने की शक्ति विकसित हो जाए । यह तो उल्टी बात हुई कि डाकू से लड़ने के लिए चोर को बसा लिया जाए । इससे शरीर में और नुकसान भी हो सकते हैं । यज्ञ की ऊष्मा शरीर में प्रवेश करने पर केवल रोगाणुओं को ही समाप्त करती है । स्वस्थ कोषों पर उसका तनिक भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता वरन उनकी पुष्टि ही होती है और सभी प्रकार के रोगाणुओं से लड़ने की शक्ति विकसित होती है । यह उपाय हानिरहित भी है, सस्ता भी है और स्थायी भी है । वैसे तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि यह जो टीके लगते हैं उनका आविष्कार यज्ञ से ही हुआ है ।

"वह कैसे गुरुदेव ?"

"लंदन में एक बार एक भयंकर रोग फैल गया । सभी चिकित्सक उस रोग के कीटाणुओं को समाप्त करने की दवा खोजने के लिए अनुसंधान कार्य में जुट गए पर लाख प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिल रही थी । कोई भी दवा कारगर नहीं हो रही थी । एक डाक्टर अपने घर की प्रयोगशाला में कार्य में व्यस्त थे । सफलता न मिल पाने से हताश हो रहे थे । थक कर उन्होंने अपनी पत्नी से चाय ले आने को कहा और निढाल होकर कुर्सी पर बैठकर सिगरेट फूंकने लगे । पत्नी ने चाय लाकर रख दी । डाक्टर ने सिगरेट को एश ट्रे में रख दिया और चाय पी तो चीनी कुछ कम लगी । उनके कहने पर पत्नी ने और चीनी लाकर चाय में डाल दी । पर चीनी डालते समय चीनी के कुछ दाने जलती हुई सिगरेट पर गिर गए । चीनी जलने की गंध अवश्य आई पर उस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया । चाय पी कर डाक्टर ने पुनः प्रयोग प्रारंभ किया तो वह यंत्र में यह देख कर हैरान रह गया कि सारे कीटाणु मर चुके

थे । वह विचारमग्न हो गया कि बिना किसी दवा के यह कैसे संभव हुआ । तभी उसे चीनी जलने की घटना का ध्यान आया । उसने पुनः जीवित कीटाणुओं को लेकर और अग्नि में चीनी डालकर उसके धुएं का प्रभाव देखा तो वे कीटाणु फिर धुएं से मर गए । इसी प्रकार यज्ञाग्नि में जो सामग्री व खाद्य पदार्थ डाले जाते हैं उनकी गैस का रोग कीटाणुओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है ।"

[गुरुदेव ने वर्षों पूर्व अपनी चर्चा में जो बातें बताई थीं उनकी सत्यता बराबर हमारे सामने आती रही है । अभी हाल ही में सूरत में प्लेग की बीमारी फैली थी तो सारे संसार में हाहाकार मच गया । पर उस रोग से बचाव के लिए वहां हजारों घरों में कई दिन तक यज्ञ किए गए थे । उस यज्ञ के प्रभाव से जल्दी ही रोग पर काबू पा लिया गया । सैकड़ों क्विन्टल हवन सामग्री तो गायत्री तपोभूमि से ही गई थी ।]

"यज्ञ से रोग पर काबू पाने की बात तो अब हमारी समझ में आ गई, पर इससे इलाज कैसे होता है ? बीमारी में तो गोली, कैप्सूल व इंजेक्शन के बिना काम नहीं चलता ।" हमने पूछा ।

"चलता है, काम चलता है और खूब अच्छी तरह चलता है ।" गुरुदेव ने बताया । "रोग होने पर शरीर में औषधि पहुंचानी होती है । दवा, गोली, चूर्ण, इंजेक्शन आदि अनेक माध्यम से यह कार्य होता है । मुख से दवा को शरीर में भेजने से उसका प्रभाव देर से होता है, जबकि इंजेक्शन से सीधे रक्त में दवा पहुंच कर शीघ्र ही सारे शरीर में फैल जाती है । इससे भी अधिक प्रभावी तरीका है सीधे सांस द्वारा शरीर में जाकर असर करना । गंभीर रोगी को ऑक्सीजन की नली सीधे नाक में लगा देते हैं कि नहीं । यज्ञ से भी यही होता है ।

हवन में स्वास्थ्य संवर्धन और रोग निवारण की जो अदभुत शक्ति है उसका आधार यही है कि उपयुक्त पदार्थों को यज्ञाग्नि में वायुभूत बनाकर उनका प्रभाव कई गुना बढ़ा दिया जाता है । वायु रूप बनी औषधियां जितना काम करती है उतना वे खाने पीने से नहीं कर सकतीं । रोग निवारण के

साथ दुर्बल शरीर को बलवान बनाने के लिए पौष्टिक आहार की भी आवश्यकता होती है पर कमजोर देह और कमजोर पेट वाला उन्हें हजम कैसे करे । रोगी व्यक्ति की पाचन क्रिया मंद पड़ जाती है और हल्का भोजन भी हजम नहीं हो पाता, फिर पौष्टिक भोजन कैसे हजम हो । यज्ञ में इसका भी समाधान है । हवन किए हुए पौष्टिक पदार्थ वायुभूत होकर नाक, मुख व रोमकूपों द्वारा शरीर में प्रवेश करके अभीष्ट फल प्रदान करते हैं ।

तुमने बुहारी बाबा का किस्सा सुना है । वे किसी प्रकार का भोजन नहीं खाते थे, केवल प्राणवायु के सहारे ही स्वस्थ जीवन जी रहे थे । उनकी आयु भी काफी हो गई थी । स्वामी रामतीर्थ ने जब विदेशों में उनके बारे में बताया तो किसी को विश्वास नहीं हुआ । वहां से विशेषज्ञों की एक टीम ने आकर हर प्रकार से परीक्षण किया तो यह बात सत्य पाई गई । बुहारी बाबा ने उन्हें बताया कि वायुमंडल में सारे पौष्टिक तत्त्व विद्यमान रहते हैं । कोई भी व्यक्ति साधना से ऐसी शक्ति प्राप्त कर सकता है कि उन तत्वों को सांस के द्वारा शरीर में खींच ले । यह तत्व यज्ञ से निकले धुंए में होते हैं । जो खाद्य पदार्थ यज्ञ में डाले जाते हैं वे सब यज्ञीय वायु में मौजूद रहते हैं ।

पुराने घाव भी यज्ञीय ऊर्जा व धुंए से जल्दी सूख जाते हैं क्योंकि रोगाणुओं का नाश हो जाने से मवाद बनना बंद हो जाता है । शरीर के भीतर या बाहर जहां भी छोटे या बड़े जख्मों के कारण पायरिया, तपेदिक, दमा, नासूर, कैंसर, संग्रहणी, जुकाम आदि रोग होते हैं उन्हें सुखाने में हवन की गैस बहुत ही लाभदायक होती है । हवन की गैस सड़न को रोकती है और किसी प्रकार का दुष्प्रभाव भी नहीं डालती । जबकि अंग्रेजी दवाएं अपने कुप्रभाव से अन्य कई रोगों को भी जन्म देती हैं ।

शारीरिक रोगों का ही नहीं, मानसिक रोगों के निवारण की भी यज्ञ धूम्र में अपूर्व क्षमता है । काम, क्रोध, मोह, मद, ईर्ष्या, द्वेष, कायरता, कामुकता, आलस्य, प्रमाद, सनक, उद्वेग, आवेश, संदेह, अविश्वास, अहंकार, निराशा, विस्मृति आदि अनेक मनोविकारों की चिकित्सा हवन से ही संभव है । एलोपैथी या अन्य किसी भी इलाज से यह ठीक नहीं हो

पाते । ऐसे रोगों के लिए यज्ञ ही एकमात्र विश्वस्त पद्धति है ।

अब तो तुम समझ गए होगे कि यज्ञ में बल वर्धन और रोग निवारण की अदभुत शक्ति है ।"

"हां गुरुदेव यह सब तो हम समझ गए । आज तो अनेक भ्रांतियां दूर हो गई हैं ।" हमने निवेदन किया ।

"अच्छा तो बाकी बातें कल बताएंगे ।"

विशेष यज्ञ

अगले दिन रामनवमी का पर्व भी था । गुरुदेव ने पर्वपूजन के पश्चात हमसे कहा "जानते हो रामनवमी की विशेषता क्या है ?"

"हां गुरुदेव, इस दिन रामचंद्र जी का जन्म हुआ था ।" हमने चहक कर कहा ।

"सो तो है ही, पर कैसे हुआ था । राजा दशरथ ने पुत्रेष्ठि यज्ञ किया था उसके फलस्वरूप राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न का जन्म हुआ था । प्राचीन वैदिक काल में ऋषियों-मनीषियों ने गहन शोध व अनुसंधान करके यज्ञों की विस्तृत रूप रेखा बनाई थी और समयानुसार उनके प्रयोग होते रहते थे । जैसे-

१. देव वृत्तियों के विकास के लिए 'देवयज्ञ' । मनुष्यों व अतिथियों को स्नेह-सम्मान देने के लिए 'नरयज्ञ' । अगणित जीव-जंतुओं के पोषण के लिए 'भूतयज्ञ', 'बलिवैश्व यज्ञ' आदि ।

२. पोषक प्रवृत्तियों के विकास के लिए 'विष्णु यज्ञ', मानसिक जागरण के लिए 'रुद्र यज्ञ', अनाचार दमन के लिए 'चंडी यज्ञ' आदि ।

३. उपयोगी पशुधन संवर्धन के लिए 'गौमेध यज्ञ', 'अजमेध यज्ञ' आदि ।

४. बसंत और शरद ऋतु में नवीन अन्न से जो यज्ञ किए जाते हैं उन्हें 'आग्रयण यज्ञ' कहते हैं ।

५. इंद्र के निमित्त जो यज्ञ किया जाता है वह 'सौत्रामणि यज्ञ' है ।

६. 'सर्वमेध यज्ञ'-इस यज्ञ में सभी प्रकार की वनस्पतियों और अन्नों का हवन होता है ।

७. 'पितृमेध यज्ञ'-इस यज्ञ में मृत पितृादि का अस्थिदाह होता है ।

८. समाज में सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन के लिए 'वाजपेय यज्ञ', राजनीतिक अनुशासन स्थापित करने के लिए 'राजसूय यज्ञ' तथा समग्र राष्ट्र को प्रगतिशील बनाने के लिए , 'अश्वमेध यज्ञों' का विधान किया गया है ।

इसी तरह और भी अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान है । इनको सामाजिक प्रगति के लिए किया गया था परंतु व्यक्तिगत प्रयोजनों के लिए तथा कामनाओं की पूर्ति के लिए विशेष यज्ञ परिस्थितियों के अनुसार आयोजित किए जाते थे । इसमें विशेष प्रकार की समिधाएं व औषधि युक्त सामग्री का प्रयोग होता था । पुत्रेष्टि यज्ञ भी उसी प्रकार का एक विशेष यज्ञ था जिसमें औषधियों के हवन व मंत्रों के प्रभाव से प्रजनन शक्ति को उत्प्रेरित करके गर्भ धारण कराया जाता था । राजा दशरथ के आग्रह पर गुरु वशिष्ठ ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराने का परामर्श दिया था और इस यज्ञ के आयोजन के लिए लोमश ऋषि के पुत्र ऋंगी ऋषि का नाम सुझाया था क्योंकि उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया था और वे पुत्रेष्टि यज्ञ संपन्न कराने के लिए हर प्रकार से सक्षम थे । इसी यज्ञ के फलस्वरूप चारों भाइयों का जन्म हुआ था ।

अब अंत में यज्ञ के बारे में कुछ और बातें भी जान लो ।"

स्थान, समय और वस्त्र

यज्ञ के लिए स्थान स्वच्छ और पवित्र तो होना ही चाहिए, साथ ही आच्छादित भी हो । इस प्रकार यज्ञ धूम्र अधिक देर तक उस स्थान पर टिका रहता है । ऊपर खुला रहने से गर्म हवा ऊपर चली जाएगी और वायु वेग से इधर-उधर बिखर जाएगी । इस प्रकार उसकी ताप ऊर्जा एवं पौष्टिक तत्वों का अधिक लाभ यज्ञ आयोजकों को नहीं मिल पाता । बंद व ढके स्थान पर यज्ञ करने से भाग लेने वालों को अधिकतम लाभ मिलेगा । बाद में वह धुंआ तो सर्वत्र फैलकर अन्य सभी को लाभान्वित करेगा ही ।

पहले हमारे देश में जगह-जगह यज्ञ हुआ करते थे और इसीसे देश को तपोभूमि बनाया गया था । जहाँ बड़े महायज्ञों का आयोजन होता था वह स्थान भी एक तीर्थ के समान वंदनीय हो जाता था । प्रयाग शब्द में

'प्र' उपसर्ग को हटाने से 'याग' रह जाता है । याग (यज्ञ) की प्रचुरता के कारण ही प्रयाग तीर्थराज कहलाया था । काशी का दशाश्वमेध घाट भी इसका साक्षी है कि वहां दस बड़े महायज्ञ आयोजित हुए थे । भारतीय संस्कृति में यज्ञ क्षेत्र को सदैव पवित्र माना गया है । अत: यज्ञ के लिए स्थान का चुनाव भी सोच-समझकर करना चाहिए जिससे अधिकाधिक व्यक्ति उससे प्रभावित हो सकें ।

यज्ञ का सर्वोत्तम समय ऊषा काल का है । चारों ओर शांत वातावरण में जब यज्ञ धूम्र फैलता है और मंत्रों की ओजस्वी ध्वनि गूंजती है तो सभी के तन-मन में उल्लास एवं आह्लाद की एक लहर दौड़ जाती है । ऐसा लगता है कि यज्ञ कुंड से एक विद्युत तरंग निकलकर हमारे शरीर के रोम-रोम को स्फुरित कर रही है, पुष्ट कर रही है । उस समय में यज्ञ ऊर्जा का विशेष एवं सर्वोत्तम लाभ मिलता है ।

यज्ञ के समय पहनने वाले वस्त्रों का अपना प्रभाव होता है । हमें अपने शरीर को इस परिस्थिति में रखना चाहिए कि यज्ञ वायु हमारे रोम छिद्रों के द्वारा शरीर में आसानी से प्रवेश कर सके । इसके लिए ढीले-ढाले वस्त्र ही पहनें । पुरुषों को तो केवल कटि वस्त्र-धोती ही पहननी चाहिए । यदि आवश्यक हो तो कंधे पर हलका दुपट्टा डाल लें । इस प्रकार यज्ञ ताप से शरीर को अधिकतम गर्मी प्राप्त होगी और रोम छिद्र भी खुले रहकर धुंए से पौष्टिक तत्वों को आसानी से खींच लेंगे ।"

"गुरुदेव, आप केवल पीले वस्त्र पहनने का ही आदेश क्यों देते हैं ?" हमने अपनी जिज्ञासा प्रकट की ।

"इसका भी वैज्ञानिक आधार है । पुरातन ऋषियों ने जो भी निर्देश दिए हैं वह गहन शोध पर आधारित है । कपड़ों के रंग का भी हमारी मनोभूमि तथा स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है । भारतीय संस्कृति का आधार जो वैज्ञानिक तथ्य रहे हैं उन्हें आज विस्मृति के गर्त में फेंक दिया गया है । परंतु उनके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । आज विदेशों में इस बारे में शोध कार्य हो रहा है । कैलीफोर्निया (अमरीका)

के फार्म ब्यूरो संघ ने व्यापक अनुसंधान से जो तथ्य एकत्रित किए हैं उनसे प्रकट होता है कि सीधे-सादे शालीन वस्त्र स्वास्थ्य के लिए हितकर होते हैं। भड़कीले तथा चमकदार रंग के कपड़े मच्छरों तथा हानिकारक, रोगजनक कीड़े-मकोड़ों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सूरज की किरणें जब इन कपड़ों पर पड़ कर प्रत्यावर्तित होती हैं तो कीट पतंग आकर्षित होकर मनुष्य के शरीर पर दौड़ पड़ते हैं। ये वस्त्रों को तो हानि पहुंचाते ही हैं, मनुष्य के शरीर पर भी रोग कीटाणुओं का आक्रमण कर देते हैं। कई जगह जहरीले कीड़े काटकर चर्म रोग उत्पन्न कर देते हैं। छोटे बच्चों के कोमल शरीर पर तो इसका दुष्प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है।

इस अनुसंधान से यह भी पता चलता है कि श्वेत, पीले, गेरुए व केसरिया रंग के कपड़ों के प्रति कीट-पतंग आकर्षित नहीं होते। न वे कपड़ों को हानि पहुँचाते हैं और न पहनने वाले के स्वास्थ्य को। इसी लिए भारतीय संस्कृति ने श्वेत तथा पीत वस्त्रों को प्रमुखता दी है तथा शोभाजनक माना है।

यह तो कोरा भ्रम है कि भड़कीले रंग के कपड़ों से शारीरिक शोभा बढ़ती है। उल्टे उनसे राजसिक मनोवृत्ति, कामुकता, पशुता आदि का प्रदर्शन होता है। ये आत्मिक, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं। आज तो फैशन की डायन हमारे बच्चों को खा चली है। न जाने कैसे-कैसे चटकीले-भड़कीले वस्त्र पहनते हैं कि पहनने वाले के व्यक्तित्व की झलक भी नहीं मिलती। केवल फैशन के नाम पर दिमागी दिवालियापन ही दिखाई देता है।

अब समझ में आया कि पीले वस्त्र पहनने का विधान क्यों है।"

"हां गुरुदेव, यह तो आपने बहुत ही अच्छी बात समझाई है।" हमने संतुष्ट भाव से कहा।

हविष्य और समिधाएं

गुरुदेव ने आगे बताया "बेटा यज्ञ में प्रयोग होने वाले हविष्य और समिधाओं का भी अपना महत्व है। इनके चार भाग कर सकते हैं। (१) औषधियों का सम्मिश्रण (२) घृत (३) समिधाएं (४) पूर्णाहुति में होमे

जाने वाले विशिष्ट पदार्थ । इन चारों के अलग-अलग गुण व प्रभाव हैं ।

हविष्य में मात्र वनस्पतियों की पत्तियां, फल, फूल ही नहीं होते, अनेक प्रकार की औषधियां भी मिली होती हैं । जायफल, लौंग, कपूर, धूप, गुगुल, लोबान आदि मिलाते हैं । वृक्षों की लकड़ियां भी कूट पीस कर मिलाई जाती हैं । चंदन, देवदारु, अगर-तगर आदि की लकड़ियों का चूरा भी हवन सामग्री में मिलता है । इसमें नमकीन पदार्थों का निषेध है क्योंकि नमक (सोडियम क्लोराइड) फटकर क्लोरीन गैस पैदा करता है । जो रोग कीटाणुओं के लिए जितनी हानिकारक है वैसी ही मनुष्यों के लिए भी है । समिधाओं में भी ध्यान रखते हैं । हर किसी पेड़ की लकड़ी हवन में प्रयुक्त नहीं होती । जहां तक संभव हो आम की सूखी लकड़ी प्रयोग करते हैं । घृत भी यदि गाय का हो तो अति उत्तम है । घी अच्छी तरह पका हुआ हो जिसमें दूध, मक्खन, चर्बी आदि की जलन न आए । घी का उपयोग आवश्यक है । इसके दो लाभ हैं-पहला यह अग्नि को प्रज्ज्वलित करके तापमान को मर्यादित कर देता है । दूसरा, यह वाष्प रूप में परिणित होकर सामग्रियों के सूक्ष्म कणों को चारों ओर से घेर लेता है और उसपर विद्युत शक्ति का ऋणात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है ।

पूर्णाहुति के भी तीन भाग होते हैं । पहले स्विष्टकृत के लिए शर्करा युक्त अन्न जैसे खीर, हलुवा, मिठाई आदि की आहुति देते हैं । इनके पोषक तत्व हमारे शरीर के लिए लाभदायक हैं । दूसरी पूर्णहुति में काष्ट वर्ग के सुपारी, नारियल आदि का प्रयोग करते हैं । तीसरे वसोधारा में घी की धार छोड़ी जाती है अर्थात उसकी मात्रा बढ़ाई जाती है । इससे यह लाभ भी होता है कि यज्ञ कुंड में जहां-तहां बचा हुआ कच्चा हविष्य तुरंत ज्वलनशील हो जाता है । इससे चिकनाई व स्निग्धता की वह मात्रा हमारे शरीर को मिल जाती है जो हमारे स्वास्थ्य एवं सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप आवश्यक हो ।

यज्ञ के पश्चात बचे हुए यज्ञावशिष्ट को प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है । अब तो तुम यज्ञ के आध्यात्मिक, दार्शिनिक,

आयुर्वेदिक, भौतिक आदि सभी लाभों के बारे में भली भांति समझ गए होगे ।" गुरुदेव ने विषय का समापन करते हुए कहा ।

"हां गुरुदेव ! हम आपके अत्यंत आभारी हैं कि आपने इतनी सुंदर व्याख्या करके यज्ञ के सभी पक्षों को उजागर कर दिया है । हमारे ज्ञान चक्षु खुल गए हैं ।" हमने कहा ।

"अरे आभार हमारा नहीं यज्ञ भगवान का मानो जिनकी कृपा से इस चर्चा का अवसर उत्पन्न हुआ है । अच्छा, यज्ञ भगवान की जो प्रार्थना रोज यज्ञ के बाद करते हो वह गाओ तो ।"

गुरुदेव के आदेशानुसार हमने प्रार्थना बोलना आरंभ किया । वहां उपस्थित अन्य लोग भी तन्मय होकर गाने लगे । गुरुदेव ने भी भाव विभोर होकर साथ दिया ।

यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए ।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए ॥
वेद की बोलें ऋचाएं सत्य को धारण करें ।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक सागर से तरें ॥
अश्वमेधादिक रचाएं यज्ञ पर उपकार को ।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को ॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें ।
रोग पीड़ित विश्व के संताप सब हरते रहें ॥
भावना मिट जाए मन से पाप अत्याचार की ।
कामनाएं पूर्ण होवें यज्ञ से नर नारि की ॥
लाभकारी हो हवन हर जीवधारी के लिए ।
वायु जल सर्वत्र हो शुभ गंध को धारण किए ॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम पथ विस्तार हो ।
इदं न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥
हाथ जोड़ झुकाए मस्तक, वंदना हम कर रहे ।
नाथ करुणा रूप करुणा, आपकी सब पर रहे ॥
यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए ।
छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिए ॥

प्रार्थना पूरी होने के बाद भी गुरुदेव काफी देर तक आंखें बंद किए हुए कुछ गुनगुनाते रहे, फिर धीरे-धीरे चेतनावस्था में आकर जैसे स्वयं से ही कहने लगे, "अहा ! कितनी सुंदर रचना है । यज्ञ का सारा दर्शन, सारा अध्यात्म इसमें भरा हुआ है । एक-एक शब्द अमृत के समान है । जरा ध्यान दो । हम इस प्रार्थना में क्या कहते हैं ? यज्ञ देवता के समक्ष क्या निवेदन करते हैं ? उनसे क्या मांगते हैं ?

अपने लिए केवल मानसिक बल, जिससे हमारे भाव उज्ज्वल हों और हम छ्ल-कपट को छोड़ने में समर्थ हों । बस, और कुछ भी नहीं । अरे देवता तो सब कुछ दे सकते हैं । हमने यज्ञ किया है, घी, समग्री, मिठाई आदि क्या-क्या खर्च किया है । इतनी रिश्वत देकर तो देवता से कुछ भी मांगा जा सकता है । अरे, मांगो-मांगो ! हां यज्ञ देवता ! आज हमारी लाटरी निकाल देना, कम से कम एक लाख की । लड़के की नौकरी नहीं लगती । वह पढ़ा लिखा नहीं है, नालायक है । तो क्या हुआ, तुम तो लायक हो, जल्दी से उसकी नौकरी लगवा दो । वेतन चाहे कम हो पर ऊपरी आमदनी अच्छी हो । फिर जब हवन करेंगे तो देसी घी के लड्डू से स्विष्टिकृत आहुति देंगे ।"

गुरुदेव ने आंखें खोलकर हमारी ओर देखा और बोले "क्यों ठीक है या नहीं ? आज हर व्यक्ति यही सब मांगता है । यज्ञ की प्रार्थना तो करता है पर उसके भाव उसकी समझ में नहीं आते । अरे, मांगा तो केवल 'मानसिक बल' ही जाता है । जब आत्मबल मिल गया तो सब कुछ मिल गया । कितनी सुंदर प्रार्थना है । अपने लिए केवल आत्मबल और साथ ही यह बंधन भी कि हम सदैव वेद की भाषा ही बोलें और सत्य आचरण करें । वाह-वाह ! आज चारों ओर झूठ, मक्कारी, चालबाजी का राज है और हम केवल सत्य आचरण करें । कितना कठोर बंधन है । एक और बंधन भी कि हम नित्य यज्ञ करते रहें । केवल दिखावे के लिए नहीं, वाहवाही के लिए नहीं, बल्कि पूरी श्रद्धा भक्ति के साथ यज्ञ करें । श्रद्धा नहीं होगी, भावना नहीं होगी, विश्वास नहीं होगा तो यज्ञ करने से क्या

लाभ ? क्रिया के साथ भावना भी चाहिए । वह तो अत्यंत आवश्यक है । हम भक्तिपूर्वक नित्य यज्ञ भी करें, अश्वमेध आदि यज्ञ भी रचाऐं । यह बंधन भी हम अपने ऊपर ले रहे हैं इस प्रार्थना में । मांगा तो कुछ भी नहीं, उल्टे अपने ऊपर कठोर बंधन और लगा लिए ।

पर यह यज्ञ हम क्यों करें ? वेद और सत्य का आचरण क्यों करें ? इस प्रार्थना में यह भी बता दिया है । यह सब 'पर उपकार को' करें । संसार में जितने भी जीवधारी हैं सभी हर्ष में मग्न हों और उनके शोक संताप सब दूर हो जाएं । चारों ओर धार्मिक मर्यादाओं का पालन हो जिससे संसार में सभी को लाभ हो । विश्व में कोई भी रोग पीड़ित न रहे । किसी के भी मन में एक दूसरे के प्रति पाप या अत्याचार की भावना न आए । सारी दुर्भावनाऐं मिट जाएं । सभी नर-नारियों की कामनाएं पूर्ण हो जाएं । हम सभी में प्रेम प्रभाव हो, एक दूसरे के प्रति सहयोग सद्भाव की भावना हो । आपस में किसी भी प्रकार का स्वार्थ भाव न रहे ।

इतना ही नहीं । यह यज्ञ हम केवल मनुष्यों के भले के लिए ही नहीं कर रहे हैं । यह सभी जीवधारियों को लाभ पहुंचाए । पशु-पक्षी, कीट-पतंग, पेड़-पौधे आदि सभी को इस यज्ञ का लाभ मिले । वायु और जल भी शुद्ध व पवित्र हों, सुगंधित हों । चारों ओर उत्तम वातावरण हो । हम इसी से यज्ञ भगवान के समक्ष नमन-वंदन करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि भगवान की करुणा सब पर रहे । भगवान की कृपा-करुणा केवल हम पर ही न रहे बल्कि सभी को उसका लाभ मिले । सबमें हम भी तो आ ही जाते हैं ।

यही सच्चा यज्ञीय तत्वदर्शन है । इस प्रार्थना को समझो, मन की गहराई में उतारो और इसी भावना से यज्ञीय जीवन का आनंद लो ।

सर्वे भवंतु सुखिनः ।"

गायत्री माता

कुछ दिनों बाद पुनः अवसर मिलने पर हमने निवेदन किया, ''गुरुदेव! यज्ञ पिता गायत्री माता में आपने यज्ञ के बारे में तो बहुत ही विस्तार से बता दिया था और हमारी सभी शंकाओं का समाधान कर दिया था । अब गायत्री के बारे में भी ऐसे ही समझाने की कृपा करें । सबसे पहले तो यही बड़ा विचित्र लगता है कि हम गायत्री को माता कहते हैं ।''

''क्यों, इसमें विचित्र क्या है ?'' गुरुदेव ने पूछा ।

''गुरुदेव ! माता तो वह होती है जो हमें जन्म देती है । फिर यह गायत्री कैसे माता हुई ? उसे तो हम देख भी नहीं सकते । और गुरुदेव ! गाय को भी माता कहते हैं, पृथ्वी को भी माता कहते हैं । आखिर हमारी कितनी माताएं होती हैं ?

सुनकर गुरुदेव जोर से हंसे और घूरकर मुझे देखने लगे मानों थाह ले रहे हों कि कहीं मजाक में ही तो मैंने ऐसी बात नहीं कह दी । पर हमारी गंभीरता और प्रश्न की गूढ़ता को देखते हुए वे भी सतर्क हो गए । कुछ देर मौन रहने के बाद उन्होंने वंदनीया माताजी भगवती देवी की ओर इशारा करके पूछा ''बता बेटा ! ये कौन बैठी हैं ।''

''ये तो हमारी माताजी हैं ।'' हमने तुरंत ही कहा ।

''क्यों ? ये तुम्हारी माता कैसे हो गईं ? इन्होंने तुम्हें जन्म तो दिया ही नहीं है । फिर ये उम्र में भी तुम से छोटी हैं । इन्हें तुम माता क्यों कहते हो ?''

''जी.....जी..... गुरुदेव.. ...!'' हम हकलाने लगे । माताजी भी यह देखकर मुस्कराने लगीं ।

''बेटा ! जो तुम्हारे मन में अटक रहा है, शब्दों में व्यक्त नहीं हो पा रहा है, वही तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है । यह नारी तुम्हें स्नेह करती है, तुम्हारी सुख-सुविधा का, खाने-पीने का ध्यान रखती है । तुम्हें कोई कष्ट हो, बीमारी हो तो हर प्रकार से सेवा करके दुःख दूर करती है और कभी हम नाराज हो जाएं तो ढाल बनकर तुम्हारी रक्षा करने को हमसे भी टक्कर

लेने लगती है । तभी तो तुम इन्हें माताजी कहते हो ।" इतना कहकर गुरुदेव ठठाकर हंस पड़े । माताजी भी इस बात पर जोर से हंसने लगीं । हमसे कुछ कहते न बना । पूज्यवर ने ही बात को आगे बढ़ाया ।

"बेटा ! हमारे ऋषियों ने गहन चिंतन के बाद गायत्री को माता की पदवी पर सुशोभित किया है । गायत्री ने तुम्हें या हमें ही नहीं, सारे संसार को जन्म दिया है । यह सारी सृष्टि, सारा ब्रह्मांड ही गायत्री से उत्पन्न हुआ है । वही सबका पालन-पोषण करती है, अन्न-जल की व्यवस्था करती है, औषधियां प्रदान करती है, कष्ट में हमारी रक्षा करती है, कोटि-कोटि अनुदानों-वरदानों की हम पर सतत वर्षा करती है । तभी तो वह सारे संसार की माता है, जगन्माता है, विश्वमाता है ।

आस्तिक-नास्तिक, साकार-निराकार के झगड़े में तो मत जाओ, पर यह तो निश्चित ही है कि विराट सृष्टि-ब्रह्मांड का नियंता परमेश्वर अतुलित शक्ति संपन्न है, सार्वभौमिक है, सार्वलौकिक है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में सृजन, अभिवर्धन और परिवर्तन के माध्यम से सृष्टि-संचालन का चक्र चला रहा है । जड़-चेतन सभी में उसी ईश्वरीय शक्ति का विद्युत प्रवाह तरंगित हो रहा है । ब्रह्मा द्वारा ही सृष्टि की रचना हुई है, चौरासी लाख योनियों के चक्र में जीवधारियों को बांधा गया है । विष्णु उन सबका पोषण करते हैं । महाकाल शंकर संहार और परिवर्तन द्वारा इस सृष्टि चक्र को गति प्रदान करते हैं । इन सबसे भी ऊपर गायत्री की महिमा है । गायत्री सद्बुद्धि की, सद्विचारों की देवी है । इसके बिना तो कुछ भी संभव नहीं है । ब्रह्मा-विष्णु महेश भी यदि सद्बुद्धि से काम न करें, आपस में उचित तालमेल न रखें तो महाप्रलय में क्या देर लगेगी । इसी लिए तो कहते हैं कि गायत्री से ही सृष्टि की रचना हुई है । वही इसकी पोषक है, नियामक है, नियंत्रक है । तभी तो माता की पदवी पर आसीन है ।

मां स्नेह व श्रद्धा का अटूट संगम है । उसके हृदय से अपने बच्चों के लिए प्रेम व वात्सल्य की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है । उसके लिए तो 'कुटिल, कपटी, कपूत' भी आंख के तारे और जिगर के टुकड़े

के समान हैं । बच्चों को भी मां की गोद में ही सारे संसार का सुख मिलता है । उसके आंचल तले अपूर्व आत्मबल जाग्रत होता है । मां का ध्यान करते ही मन में स्नेह, श्रद्धा के झरने फूटने लगते हैं । मां के साथ स्नेह-बंधन कितना अटूट व पवित्र है इसका बखान करना भी संभव नहीं । उसे प्रसन्न रखने की उसकी इच्छानुसार कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है । इसीसे ऋषियों ने गायत्री को माता कहा है जिससे सभी की श्रद्धा उसमें स्थापित हो और सभी सद्बुद्धि से कार्य करें ।

तुम्हें अर्जुन के जीवन की एक घटना सुनाते हैं । अर्जुन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर था, बल व पौरुष में उस जमाने में कोई भी उसकी टक्कर का नहीं था । उस सजीले पुरुष पर उर्वशी नामक अप्सरा मोहित हो गई । वह भी उस समय की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी थी । उसने अर्जुन पर बहुत डोरे डाले, उससे कहा कि वह उसके समान पुत्र की मां बनना चाहती है । अर्जुन ने कहा 'देवि ! आप इस चक्कर में न पड़ें, इसमें भारी कष्ट उठाने पड़ते हैं । फिर यह भी निश्चित नहीं है कि पुत्र ही हो या पुत्री । जो भी हो वह मेरी तरह न होकर कायर और कुरूप भी हो सकता है । इसलिए देवि आप मुझे ही अपना पुत्र समझें । मैं तो पहले ही आपको माता मानता हूँ । मातृवत परदारेषु !' और यह कहते हुए उसके चरणस्पर्श करके आशीर्वाद की कामना की ।

और सुनो ! छत्रपति शिवाजी थे । विकट पराक्रमी योद्धा, उनकी भवानी नामक तलवार के आगे शत्रु सेना गाजर-मूली की तरह कट जाती थी । उन्होंने अनेक युद्ध जीते । एक बार उनके एक सेनापति ने एक यवन कन्या को उनके समक्ष प्रस्तुत किया और कहा कि युद्ध में जीतकर यह विशेष तोहफा आपके लिए लाया हूँ । शिवाजी कुछ देर उस अप्रतिम सुंदरी को निहारते रहे । सेनापति ने पूछा कि वे ऐसे क्यों देख रहे हैं तो जानते हो शिवाजी ने क्या कहा ? वे बोले 'काश ! मेरी मां भी इस जैसी सुंदर होती तो मैं कितना सुंदर होता!' उन्होंने तुरंत आदेश दिया कि यह कन्या उनकी मां के समान है और आदर सहित गौहर बानू को उसके घर

सुरक्षित भिजवा दिया ।

तो यह होती है मातृवत दृष्टि जो हमारी भावनाओं को श्रद्धा और पवित्रता से ओत प्रोत कर देती हैं । गायत्री माता की मूर्ति से हमें यह प्रेरणा भी लेनी चाहिए कि प्रत्येक कन्या को माता के समान ही समझें जैसे अर्जुन और शिवाजी ने समझा था । हम तो तुम्हारी माताजी को भी माताजी ही कहते हैं ।" यह कहकर गुरुदेव हंस पड़े । इस बार माताजी ने व हमने खुलकर उनका साथ दिया ।

गुरुदेव ने आगे बताया "इस पृथ्वी पर महाशक्ति का प्रथम अवतरण वेदमाता के रूप में ही हुआ । मनुष्य को जिस ज्ञान और विज्ञान की आवश्यकता थी उसका प्रकटीकरण चार वेदों के रूप में इसी गायत्री महामंत्र से हुआ । इस प्रकार वेदमाता का पृथ्वी पर अवतरण हुआ । उसकी प्रखरता और परिपक्वता का परिचय देवमाता के रूप में सामने आया । सृष्टि का, आदिकाल का वेदमाता स्वरूप प्रगति के मध्यकाल में देवमाता बन गया । इस काल को देवयुग और सतयुग के नाम से पुकारते हैं । उन दिनों की परिस्थितियां इतनी सुसंपन्न और सुखद थीं कि इस समृद्धि से लदी भारतभूमि को संसार भर में एक स्वर से 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहा जाता था । उसने अपनी उत्कृष्टता को समस्त संसार में बिखेरा था और जगद्गुरु कहलाने का श्रेय पाया था । गायत्री भारतीय संस्कृति की भी जननी है । इस देव संस्कृति की ऋतंभरा प्रज्ञा का, ओजस-तेजस-वर्चस का संदेश घर-घर, जन-जन तक पहुंचता था । उस काल में विचारणा का स्तर उस ऊंचाई तक जा पहुंचा था जिसे ब्रह्मलोक कहते हैं । उत्कृष्ट चिंतन की परिणति आदर्श कर्तृत्व में होती थी । चारों ओर स्वर्गीय सुख-शांति दृष्टिगोचर होती थी ।

आज की गई-गुजरी स्थिति में भी उस गौरव भरे अतीत की चर्चा करते हुए हमारी छाती गर्व से फूल जाती है । यही वेदमता, देवमाता गायत्री महाशक्ति विश्वमाता की सुविस्तृत भूमिका भी निभा रही है । सामाजिक परिस्थितियों की इस भयावह विषमता को विश्वमाता गायत्री

ही समाप्त कर सकती है और कर भी रही है ।

अब तो तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मिल गया कि गायत्री को माता क्यों कहते हैं । तुमने यह भी पूछा था कि पृथ्वी और गाय को माता क्यों कहते हैं । तो सुनो, श्रुति का एक वाक्य है-'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या' भूमि मेरी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ । इसके विराट भावार्थ को देखकर मन श्रद्धा से भर जाता है । यह पृथ्वी हमें धारण करती है, हमारा पालन-पोषण करती है, हम सब उसके बेटों के समान हैं । वहां कोई भेदभाव नहीं है । संसार के समस्त प्राणी उसके आश्रय, स्नेह, दुलार की अजस्र धारा में गोते लगाकर आनंदमय होते हैं । इसी से यह धरती माता है, जन्मभूमि है, मातृभूमि है । मातृवत श्रद्धा की अधिकारिणी है । और गाय तो सचमुच गौ माता ही है । अमृत सदृश दूध से हमारा पोषण करती है । गोमूत्र व गोबर औषधि के रूप में प्रयुक्त होते हैं । मरने पर अपनी चमड़ी भी हमारे लाभ के लिए दे जाती है । इतना तो अपनी सगी मां, हमें जन्म देने वाली मां भी नहीं करती । हमारे ऋषियों ने इसी कारण गौमाता के पवित्र संबोधन से उसकी आराधना की है ।

अब तो तुम्हारी सब शंकाओं का समाधान हो गया ।'' गुरुदेव ने अपनी बात को विराम दिया ।

''हां, गुरुदेव ! हमने कहा ।

''लेकिन यही तो रोना है कि आज सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो रहा है । हमारी देवसंस्कृति में गायत्री, गाय और पृथ्वी को ही नहीं वरन् प्रत्येक नारी को माता कहा गया है । 'परदारेषु मातृवत' की पवित्र दृष्टि से उनका सम्मान होता है । परंतु विदेशी सभ्यता ने नारी को मात्र भोग्या बनाकर रख दिया है । हर ओर नारी को अश्लील रूप में ही देखा और प्रस्तुत किया जाता है । विज्ञापनों में तो उसे अर्धनग्न दिखाने का फैशन चल पड़ा है । लोग खुले अम एक दूसरे की पत्नियों की कमर में हाथ डालकर नाचते हैं, न पति को एतराज है और न पत्नी को । न जाने इस विदेशी सभ्यता की नकल हमारे भोले-भाले देशवासियों को अभी और

कितना भटकाएगी । मां गायत्री उन्हें सद्‌बुद्धि प्रदान करें ।

अच्छा अब आगे कल बात करेंगे ।" कहकर गुरुदेव अपने साधना कक्ष में चले गए ।

त्रिपदा गायत्री

अगले दिन गुरुदेव ने स्वत: ही चर्चा प्रारंभ करते हुए कहा "गायत्री महामंत्र के तीन चरण मिलकर त्रिवेणी संगम बनाते हैं । इसे त्रिपदा गायत्री कहते हैं । तीर्थराज प्रयाग में गंगा, यमुना, सरस्वती की तीन धाराओं का त्रिवेणी संगम है । तुलसीदास जी ने कहा है कि इस संगम में स्नान करने का पुण्यफल तत्काल मिल जाता है ।

मज्जनफल देखिय तत्काला । काक होहिं पिक बकहु मराला ॥

क्या फल मिलता है ? कौए कोयल हो जाते हैं और बगुले हंस बन जाते हैं । यह अलंकारिक वर्णन है । इससे तात्पर्य है कि लोगों की आकृति रंग-रूप तो ज्यों का त्यों रहता है पर प्रकृति बदल जाती है, आध्यात्मिक कायाकल्प हो जाता है ।

यह कायाकल्प त्रिपदा गायात्री की आध्यात्मिक त्रिवेणी में स्नान करने से होता है । गायत्री मंत्र में एक ॐ कार है- अ, उ, म् । इन तीनों का विस्तार तीन व्याहृतियों के रूप में हुआ है-भू:, भुव:, स्व: । इन तीनों व्याहृतियों की विवेचना गायत्री के तीन चरणों में हुई है । पहला 'तत् सवितुर्वरेण्यं', दूसरा 'भर्गो देवस्य धीमहि' और तीसरा 'धियो यो न: प्रचोदयात' है । प्रत्येक चरण में तीन-तीन शब्द हैं, इस प्रकार तीनों के मिलकर नौ शब्द होते हैं जिनका प्रतीक यज्ञोपवीत के नौ धागे हैं ।"

"यह तो तीन का पहाड़ा हो गया" हम बीच में ही बोल पड़े ।

"हां बेटे ! तभी तो इसे त्रिपदा गायत्री कहते हैं । इसमें तीन की बहुत महिमा है । इन तीनों चरणों के परब्रह्म का निरूपण करते हुए ईश्वर की तीन सर्वोच्च विशेषताओं सत-चित-आनंद के रूप में पुकारा गया है । मानव जीवन में इसकी झांकी 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के रूप में होती है । इसके तत्वज्ञान में यदि और विस्तार से जाएं तो इसे कर्मयोग,

ज्ञानयोग, भक्तियोग भी कह सकते हैं । हमारे स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर तीनों को पवित्र एवं परिष्कृत बनाने में जिस दृष्टि, नीति और मर्यादा की आवश्यकता है उसी को कर्म, ज्ञान और भक्ति कहते हैं । व्यवहार में यही धार्मिकता, आध्यात्मिकता और आस्तिकता के रूप में प्रकट होते हैं । अध्यात्म दर्शन के यही तीन खंड हैं ।

धार्मिकता का वास्तविक अर्थ है-कर्त्तव्यपरायणता । धर्म और कर्म एक ही तथ्य के दो नाम हैं । किसी को चाहे धर्मनिष्ठ कहो या कर्मयोगी या कर्त्तव्यपरायण, बात एक ही है । परंतु आजकल तो लोग धर्म की न जाने कैसी-कैसी विचित्र व्याख्या करते हैं कि अर्थ का अनर्थ हो जाता है । आध्यात्मिकता कहते हैं अपने लिए श्रेयस्कर मार्ग का चयन करना, विवेकपूर्ण रीति-नीति का निर्धारण करना । आस्तिकता हमें प्रकारांतर से कर्मफल व्यवस्था पर विश्वास कराती है । इससे मन स्वतः ही पाप कर्मों से बचने का प्रयास करता है और सुखी रहने के लिए सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित होता है । भक्ति का अर्थ है प्रेम । ईश्वर से प्रेम करने का, आस्तिकता का अर्थ है उसके बनाए पदार्थों का सदुपयोग, अर्थात सभी प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करना । संक्षेप में उदारता, करुणा, दया, सेवा, सहायता जैसी सद्भावनाओं को ही भक्ति या आस्तिकता कहते हैं ।

यह समस्त संसार गायत्री रूप है । तीनों लोक इसी की परिधि में हैं । त्रिपदा गायत्री की तत्व दृष्टि यही है कि सर्वत्र उसी दिव्य शक्ति को संव्याप्त देखा जाए और संपूर्ण जड़-चेतन सृष्टि के साथ सद्व्यवहार किया जाए । इसे अपनाकर मनुष्य हर घड़ी कण-कण में प्रभु-दर्शन का आनंद लेता रह सकता है ।

इस विराट ब्रह्म को ही 'भूः भुवः स्वः' कहा गया है । यही भूलोक पाताललोक और स्वर्गलोक है । जीव-जगत के भी तीन क्षेत्र हैं-जीव, प्रकृति और ब्रह्म । इनका संचालन भी क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और भावशक्ति से होता है । गायत्री मंत्र की तीन व्याहृतियों में इसी जीव-चेतना का वर्णन है । शक्तियों का विवेचन करते हुए इन्हीं तीन आधारों को

सरस्वती, लक्ष्मी और काली कहते हैं । ये तीनों ही गायत्री महाशक्ति की तीन धाराएं हैं । इससे हमारे तीनों शरीरों में जो प्राणशक्ति भरी रहती है, वह ओजस, तेजस और वर्चस है । ओजस कहते हैं सुंदरता, बलिष्ठता, सक्रियता, दक्षता को जो हमारे शरीर को प्रतिभासंपन्न एवं आकर्षक बनाता है । ओजस की कमी से चेहरे पर मुर्दनी छाई रहती है, आलस्य घेरे रहता है और आधा अधूरा काम भी बड़ी कठिनाई से हो पाता है । तेजस मानसिक प्रखरता का नाम है जो हमारे सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करता है । इस क्षमता से संपन्न व्यक्ति कुशाग्र बुद्धि, सूझबूझ वाले, दूरदर्शी, विवेकवान होते हैं । वर्चस हमारे कारण शरीर को प्रकाशित करता है । इससे आत्मबल, आत्मतेज बढ़ता है । उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, श्रद्धा, श्रमशीलता जैसी विशेषताएं इससे प्रस्फुटित होती हैं । यह वर्चस ही देवत्व है । ओजस-तेजस-वर्चस के रूप में त्रिपदा गायत्री अपना अनुग्रह, चमत्कार और वरदान साधक को प्रदान करके निहाल कर देती है ।''

पूज्य गुरुदेव ने अपनी वाणी को तनिक विश्राम दिया तो हम अपने को बोलने से रोक न सके, ''गुरुदेव ! इस त्रिपदा गायत्री की महिमा तो बहुत व्यापक है । ये तो तीनों लोकों में, कण-कण में व्याप्त दिखाई दे रही है ।''

''अरे अभी और भी सुनो,'' पूज्यवर ने आगे कहना आरंभ किया । ''हमारे शरीर के तीन भाग है-सिर, धड़ और पैर । इसके पोषण के लिए आहार रूप में हमें अन्न, जल और वायु की आवश्यकता होती है । प्राणियों की प्रकृति भी सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी होती है । प्रकृति या ब्रह्म का यह त्रिधा अस्तित्व त्रिपदा गायत्री का ही क्रीड़ा-क्षेत्र है ।

इस त्रिपदा गायत्री से ही वेदों की उत्पत्ति हुई है । वेदों का विषय ज्ञान, कर्म और उपासना है । यही ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग है । इनके आधार पर हमारी विपत्तियों के तीनों कारणों-अशक्ति, अभाव और अज्ञान का निवारण होता है । विपत्तियां भी तीन प्रकार की होती हैं । आधिभौतिक जो हमारी अनुपयुक्त क्रियाओं एवं अनाचरण से उत्पन्न होती हैं । आधिदैविक वे हैं जो प्रारब्धवश अप्रत्याशित रूप में दुर्घटनाओं के

रूप में आती हैं । प्रत्यक्षतः हमारा उन पर कोई वश नहीं होता । तीसरी आध्यात्मिक विपत्तियां हमारे विकृत चिंतन के फलस्वरूप मनोविकारों की प्रतिक्रिया बनकर सामने खड़ी रहती हैं । त्रिपदा गायत्री की दिव्य शक्ति से ही इन तीनों का निवारण संभव होता है ।

महाकाल के त्रिशूल में भी तीन नोकें हैं । शिव के नेत्र भी तीन हैं । इनमें पाप, ताप और अभिशाप तीनों के विनाश की परिपूर्ण शक्ति है । काल समय को भी कहते हैं और उसके तीन चरण हैं–भूत, वर्तमान और भविष्य । भूतकाल की संचित, वर्तमान की उपार्जित और भविष्य की संभावित परिस्थितियों को संतुलित बनाने की क्षमता इस त्रिपदा गायत्री में है । हमारी आयु के भी तीन भाग हैं–बचपन, यौवन और बुढ़ापा । इनकी परिस्थितियां, समस्याएं और आवश्यकताएं एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं । त्रिपदा गायत्री अपनी अनुकंपा से यथासमय उपयुक्त प्रकाश देकर आनंद से परिपूर्ण कर देती है ।

यह त्रिपदा गायत्री तीन चरण वाली है । तीन शरीर, तीन लोक, तीन गुण, तीन देव, तीन शक्ति, तीन काल के रूप में इसका विस्तार है । मनुष्यों की परख उनके गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर ही होती है । इसकी उपासना के फल भी तीन हैं–अमृत, पारस और कल्पवृक्ष । गुणों की दृष्टि से त्रिपदा को निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा कहा गया है । निष्ठा का अर्थ है तत्परता, दृढ़ता । प्रज्ञा कहते हैं विवेकशीलता, दूरदर्शिता को । श्रद्धा है आदर्शवादिता और उत्कृष्टता ।

तो देखा बेटे ! इस महामंत्र का, त्रिपदा गायत्री का विस्तार कितना व्यापक है ।"

"हां गुरुदेव ! यह सब सुन कर तो हमारे ज्ञान चक्षु खुल गए ।" हमने निवेदन किया ।

"हां बेटे ! इस त्रिपदा गायत्री की विशालता को मापना हमारे बस की बात नहीं है । जो कुछ हमने तुम्हें बताया है वह तो उस शक्ति–पुंज का एक अंश मात्र ही है । यह अनेकानेक सूक्ष्म शक्तियों का स्रोत है । इस

गायत्री महाशक्ति के दो रूप हैं। एक ज्ञान दूसरा विज्ञान । ज्ञान पक्ष को उच्चस्तरीय तत्वज्ञान की, ब्रह्मविद्या की, ऋतंभरा प्रज्ञा की संज्ञा दी जा सकती है । यह आस्था और आकांक्षा को उच्चस्तरीय बनाने का साधन है । स्वाध्याय, सत्संग, चिंतन, मनन की गतिविधियां इसी के निमित्त चलती हैं । ज्ञानयज्ञ, विचारक्रांति आदि बौद्धिक उत्कृष्टता के साधन इसी आधार पर जुटते हैं ।

गायत्री का दूसरा पक्ष है विज्ञान । उपासना एवं साधना की अनेक प्रथा-पद्धतियों के रूप में इसका विधान है । यह वह साधन है जिससे मनुष्य अपनी प्रसुप्त चेतना को जगाने, साधने और सदुपयोग करने में समर्थ होता है । इसी को गायत्री महाविज्ञान कहते हैं । प्रसुप्त का जागरण इसका उद्देश्य है । मनुष्य की महानता को सुधारने, उभारने और उछालने के तीनों प्रयोजनों को यह पूरा करता है । इसी के सहारे भौतिक प्रगति के अनेक आधार खड़े होते हैं ।

अरे आज तो बहुत समय हो गया । अब कल इस महामंत्र का अर्थ समझाएंगे ।''

गायत्री का भावार्थ

दूसरे दिन हमने गुरुदेव से उस विषय में आगे चर्चा प्रारंभ करने का आग्रह किया । पूज्यवर ने पहले अपनी धीर-गंभीर वाणी में गायत्री मंत्र का उच्चारण किया और फिर बोले, ''बड़ा विलक्षण मंत्र है यह । समूचे वेद वाङ्मय में इसकी टक्कर का कोई दूसरा मंत्र नहीं है । जितना गूढ़ उतना ही सरल । इतना सारगर्भित कि कोई थाह ही नहीं । पहले गायत्री का शब्दार्थ देखो । यह दो श्ब्दों के मेल से बना है । ये शब्द हैं-गय (प्राण) और त्राण (रक्षा करना), अर्थात जो प्राणों की रक्षा करती है वह गायत्री है । कितना सरल अर्थ है । प्राण से ही तो जीवन है । यदि प्राण नहीं तो फिर क्या बचा । प्राणहीन तो शव हो जाता है । अतः जो प्राणों की रक्षा करे वह तो सबसे अधिक महत्वपूर्ण होगा ही । पर यह सब कैसे होगा ।

प्राण कहते हैं चैतन्यता को, सजीवता को । हमारे भीतर जो गति,

क्रिया, विवेक, विचारशक्ति एवं जीवन धारण करने वाला तत्व है, वही प्राण है । इसी प्राण से हम जीवित हैं । मनुष्य में जो शक्ति है वह हाड़, मांस, रक्त की नहीं प्राण की शक्ति है । जब प्राण निकल गया जो जीवन का अंत हो जाता है । हाड़, मांस, रक्त तो वैसे ही रहते हैं पर प्राणरहित देह का कुछ भी प्रयोजन नहीं ।

प्राणवान और निष्प्राण के बीच भी एक स्थिति है जिसे न्यूनप्राण कहते हैं । इसमें प्राण तो होता है पर वह निर्बल पड़ जाता है । मनुष्य जीवन की यह सबसे विषम स्थिति है । बाह्य शरीर तो ठीक दिखाई देता है पर वह भीतर ही भीतर खोखला हो जाता है ।''

''जैसे तपेदिक या अन्य गंभीर बीमारियों में हो जाता है ।'' हमने जिज्ञासा प्रकट की ।

''अरे नहीं बेटे ! इसका शारीरिक बीमारी से कोई लेना देना नहीं, यह तो मन की निर्बलता है'' गुरुदेव ने बताया । ''आलस्य, प्रमाद, निराशा की छाया में चिंतातुर, निस्तेज, प्रभावहीन चेहरा, न कुछ करने में मन लगता है और न परिस्थितियों से जूझने का साहस ही जागता है । ऐसे व्यक्ति न्यूनप्राण होते हैं । उनमें प्राण तो है पर उसकी शक्ति क्षीण है । प्रकारांतर से शारीरिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ सकता है । तो गायत्री इस प्राणशक्ति की, प्राणबल की, प्राणवायु की रक्षा करती है। अर्थात उसे पुष्ट करती है, उसका अभिवर्धन करती है । इससे नस-नस में उत्साह की तरंगें प्रवाहित होती हैं । हृदय में दृढ़ता, साहस, धैर्य, आशा एवं स्फूर्ति की भावनाएं गूंजती हैं । प्राणबल के आधार पर मनुष्य ऐसे-ऐसे कार्य कर दिखाता है कि लोग दांतों तले उंगली दबा लें । डेढ़ हड्डी के गांधी बाबा तो लाखों करोड़ों पर भारी पड़ गए थे क्योंकि गायत्री माता ने उनके प्राण-बल को उत्कृष्ट स्तर तक प्रदीप्त कर दिया था । प्राणशक्ति के साथ-साथ ऋतंभरा बुद्धि की अद्‌भुत शक्ति का भी विकास होता है । इसके दिव्य प्रकाश में तत्व और अतत्व का, सत्य और असत्य का, श्रेय और अश्रेय का निर्णय करना सुलभ हो जाता है । यह तय करना आसान हो जाता है

कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं ।

गायत्री उस बुद्धि का नाम है जो सतोगुणी दैवी तत्वों से आच्छादित होती है । सात्विक विचार और कार्यों को अपनाने से मनुष्य की प्रत्येक शक्ति की रक्षा और वृद्धि होती है । उसकी प्रत्येक क्रिया उसे अधिक पुष्ट, सशक्त एवं सुदृढ़ बनाती है और वह दिनों-दिन अधिक शक्ति संपन्न बनता है । इसके विपरीत तमसाच्छादित बुद्धि द्वारा उत्पन्न हुए विचार और कार्य हमारी प्राणशक्ति को दिनों-दिन घटाते हैं । भोग प्रधान कार्यों से शरीर क्षीण हो जाता है । स्वार्थ प्रधान विचारों से मन अथाह पाप की दल-दल में फंसता जाता है । इस प्रकार जीवन की पेंदी में असंख्य छेद हो जाते हैं और सारी उपार्जित शक्ति उनसे निकल कर नष्ट हो जाती है । ऐसे व्यक्ति अपनी बुद्धि को दौड़ाकर चाहे जितना धन कमाएं पर तृष्णा, स्वार्थपरता, भय, अहंकार, लोभ आदि के कारण चित्त सदा दुःखी रहता है और मानसिक शक्तियां नष्ट होती रहती हैं ।

सतोगुणी, ऋतंभरा विवेक बुद्धि हमारे शारीरिक आहार-विहार को भी सात्विक रखती है । संयम, ब्रह्मचर्य, श्रमशीलता, सादगीमय प्राकृतिक दिनचर्या होने से बल-वीर्य बढ़ता है, शरीर सक्रिय रहता है और मनुष्य दीर्घजीवी होता है । मन में अपरिग्रह, परमार्थ, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, दया, सहानुभूति, मैत्री, करुणा, नम्रता, श्रद्धा, आस्तिकता आदि की भावना जाग्रत होती है । मन सदैव प्रफुल्ल और चैतन्य रहता है । शरीर और मन दोनों की सात्विक उन्नति होने से प्राणशक्ति सुरक्षित रहती है और उसकी अभिवृद्धि भी होती है । इस प्रकार गायत्री सद्बुद्धि देकर हमारी प्राण रक्षा करती है ।

जितमे भी योगी-मुनि हुए हैं, सभी ने गायत्री की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है । विश्वामित्र, याज्ञवलक्य, वसिष्ठ, भारद्वाज सभी ने गायत्री की महिमा का बखान करते हुए कहा है कि इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है । महर्षि चरक ने तो 'आयुर्वेद शास्त्र' में यहां तक कहा है कि जो भी स्त्री पुरुष एक वर्ष तक आंवले का रस पीकर प्रतिदिन प्रातःकाल

गायत्री का जाप करे, उसकी आयु निःसंदेह ११६ वर्ष की होती है ।

गायत्री मंत्र की शक्ति अपरिमित है । यह हमारे अंतःकरण चतुष्टय को, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को पवित्र रखती है । इससे हमारे लोक परलोक दोनों सुधर जाते हैं । यह तो गायत्री के शाब्दिक अर्थ की थोड़ी सी व्याख्या की है । इसकी तीनों व्याहृतियों भूः भुवः स्वः में तथा तीनों चरणों में, उनके नौ शब्दों और चौबीस अक्षरों में गूढ़ भाव समाहित हैं । इस महामंत्र के अक्षरों में बीज रूप में मानवी संस्कृति एवं आदर्शवादिता के सारे सिद्धांत सन्निहित हैं और ओंकार तो संसार के सारे ज्ञान को अपने भीतर समेटे है। इन सबकी व्याख्या करने से पहले महाभारत की एक बात सुनो ।

महाभारत के अनुशासन पर्व की यह कथा है । एक बार युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से प्रश्न किया 'हे पितामह वह मंत्र कौन सा है जिसे सदैव जपने से धर्म का लाभ होता हो । जिसको चलते-फिरते, उठते-बैठते, कहीं आते-जाते, किसी कार्य के प्रारंभ व अंत में ध्यान किया जा सकता हो । जिसके जप से आनंद, शांति व सुख मिलता हो, धन, संपत्ति और राज्य मिलता हो, भय का नाश होता हो और जो वेद के अनुकूल हो ।' यह प्रश्न पूछा युधिष्ठिर ने जो स्वयं धर्मराज थे और बड़े भारी विद्वान थे पर भीष्म पितामह उनसे भी अधिक विद्वान थे ।

उन्होंने प्रश्न सुनकर कहा 'युधिष्ठिर ! जो भी गायत्री का जाप करते हैं उन्हें हाथी, घोड़े, रथ, विमान सब मिलते हैं । उन्हें देश और विदेश में यश प्राप्त होता है । राजा, राक्षस, शत्रु, सर्प, विष कोई भी हानि नहीं पहुंचा सकता । उससे शांति मिलती है । जहां गायत्री का जप होता है वहां अग्नि कोई क्षति नहीं पहुंचा सकती, सर्प वहां से भाग जाते हैं, वहां अकाल मृत्यु नहीं होती, गौओं की संतान में वृद्धि होती है । आते-जाते, कार्य करते, हर समय इस मंत्र का जाप किया जा सकता है ।' इतनी महिमा बताई भीष्म पितामह ने इस मंत्र की । इसे गुरुमंत्र कहा गया है। चारों वेदों में लगभग बीस हजार मंत्र हैं पर गायत्री सबका गुरुमंत्र है । यजुर्वेद में तो बारंबार गायत्री की प्रशंसा आती है । ऋग्वेद और सामवेद में भी आती

है । किंतु अथर्ववेद ने तो इसकी प्रशंसा में कमाल ही कर दिया है । देखो कैसा प्यारा मंत्र है-

ॐ स्तुतामया वरदा वेदमाता प्रचोदयंतां पावमानी द्विजानाम । आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यम दत्वा ब्रजत ब्रह्मलोकं ॥

भगवान इस मंत्र में कहते हैं कि मेरे द्वारा स्तुति की गई, द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता गायत्री आयु, प्राण, शक्ति, पशु, कीर्ति धन, ब्रह्मतेज प्रदान करें ।

वेद कहता है कि गायत्री सर्वप्रथम आयु देती है । किंतु कैसी आयु प्रदान करती है यह गायत्री ? क्या क्षय के रोगी की आयु ? नहीं, ऐसी आयु जिसमें प्राण हों । इतना ही नहीं वेद कहता है कि गायत्री संतान भी देती है, पशु, घोड़े, गाय, बैल, धन, भूमि, अन्न, फल आदि सब कुछ देती है । यह सारी संपत्ति मिल जाए तो क्या मनुष्य की इच्छा पूरी हो जाती है । नहीं, उसे कीर्ति की इच्छा होती है, तो गायत्री कीर्ति भी देती है, यश भी देती है, ब्रह्मवर्चस भी देती है । ओजस, तेजस, वर्चस सब कुछ देती है ।

पर गायत्री माता यह सब कैसे देती है ? क्या केवल जाप करने से, माला फेरने से ? नहीं, चाहे जितनी माला फेरो पर कुछ भी मिलने वाला नहीं । यह मिलेगा तब जब गायत्री मंत्र के एक-एक अक्षर के भावार्थ को भलीभांति हृदयंगम किया जाएगा, उसे अपने आचरण में, व्यवहार में उतारा जाएगा, उसी के अनुसार जीवन जिया जाएगा । यह सब कुछ यज्ञ से मिलता है और गायत्री मंत्र से भी; और यदि यज्ञ गायत्री मंत्र से हो तो समझो सोने पे सोहागा हो गया ।

ओंकार

गायत्री मंत्र ॐ से प्रारंभ होता है । ओंकार को ब्रह्म कहते हैं, प्रणव भी कहते हैं । यह परमात्मा का स्वयंसिद्ध नाम है । ओंकार को अपनाने से ब्रह्म तत्व की मात्रा बढ़ती है, फलस्वरूप गुण, कर्म, स्वभाव में सात्विक भावों की प्रधानता रहती है । इससे मनुष्य स्वर्ग, मोक्ष, अमरता,

सिद्धि, आत्मदर्शन, शिवत्व की ओर बढ़ता है । ईश्वर के इस स्वयंसिद्ध नाम का अवलंबन ग्रहण करके मनुष्य ईश्वर की ओर ही चल पड़ता है । रस्सी को पकड़कर चढ़ने वाला वहीं पहुंच जाता है जहां रस्सी बंधी हो । प्रणव ब्रह्म से संबद्ध है । प्रणव की श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए ही आचार्यों ने समस्त श्रेष्ठ कर्मों में ओंकार को ही प्राथमिकता दी है । इसीलिए इसे प्रत्येक मंत्र के पहले उच्चारण करने का विधान है । ओंकार एक प्रकार का सेतु है, पुल है जिसपर से होकर ही मंत्र को पार किया जा सकता है, उसके भावों को समझा जा सकता है ।

गायत्री मंत्र में सर्वप्रथम ॐ को इसीलिए नियोजित किया है कि इस शक्ति की धारा को इस पुल पर चढ़कर पार किया जा सके । ॐ जिन अर्थों का बोधक है उन अर्थों की, गुणों की, आदर्शों की ज्योति साधक के मन को प्रकाशित कर देती है । फलस्वरूप आध्यात्मिक साधना का मार्ग सुलभ हो जाता है ।

ॐ का उच्चारण करने से एसी स्वर तरंगे गूंजती हैं जैसे घंटे पर चोट मारने से देर तक झनझनाती हुई ध्वनि निकलती रहती है । साधक के सभी स्नायु तंतु झंकृत हो जाते हैं और मन एकाग्र हो जाता है । सुनने वाले व्यक्तियों पर भी ऐसा ही प्रभाव पड़ता है और सभी के मनोभाव एक ही दिशा में केंद्रित होने लगते हैं । ओंकार का धीर-गंभीर, ओजस्वी गुंजार सभी के मन में सात्विक भाव जाग्रत करता है । गायत्री मंत्र में शब्द विज्ञान, स्वर शास्त्र का जैसा अनोखा संगम है वैसा और किसी मंत्र में नहीं है और इसका प्रारंभ ओंकार के गुंजन से होता है । ओंकार का उच्चारण करते समय यह ध्यान करना चाहिए कि हमारे हृदय की तरंगें परमपिता परमेश्वर से जुड़ रही हैं और उनके द्वारा अनुदान वरदान हम तक आ रहे हैं ।

भूः भुवः स्वः

इस मंत्र में ओंकार के बाद तीन व्याहृतियां आती हैं । ये तीनों ही त्रिपदा गायत्री के बीज मंत्र हैं । इसके बारे में तो तुम्हें बहुत कुछ बता ही

चुके हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों उत्पादक, पोषक व संहारक शक्तियों को ही भूः भुवः स्वः कहते हैं । सत, रज, तम तीनों गुणों को भी इससे जाना जाता है । भूः को ब्रह्मा, भुवः को प्रकृति और स्वः को जीव कहते हैं । अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवताओं का प्रतिनिधित्व भी यह व्याहृतियां करती हैं । इन तीनों लोकों का भी इनमें संकेत है ।

भूः का अभिप्राय है प्राणों को देने वाला, प्राणधार । भुवः का अर्थ है दुःख का नाश करने वाला और स्वः का अर्थ है सुखों को देने वाला, आनंद प्रदान करने वाला । परमेश्वर के इन तीन गुणों की प्रशंसा भूः भुवः स्वः में की गई है । पर क्या परमेश्वर इस प्रशंसा का भूखा है ? क्या उसे चाटुकारिता करने वाले चमचों की आवश्यकता है ? भाट और मीरासियों की जरूरत है ? नहीं, नहीं, यह सब कुछ भी नहीं । भगवान की प्रशंसा स्तुति तो हम इसलिए करते हैं कि उसके गुणों में से कुछ हमारे अंदर भी आ जाएं । ईश्वर को प्राणाधार कहने का लाभ तभी तो होगा जब हम स्वयं भी किसी के प्राण-आधार बनें । यदि किसी को प्राण दे नहीं सकते तो कम से कम किसी के प्राण लें तो नहीं । पर आज क्या हो रहा है ? मांसाहार की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है । अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए न जाने कितने पशु-पक्षियों की रोज हत्या करते हैं । क्या यही गायत्री माता की प्रार्थना है । मंत्र का जाप करें और स्वयं ही उसके आदेश के विपरीत कार्य करें, फिर क्या बनेगा । इसीलिए शास्त्रों ने कहा है, 'उचित आहार कर, उचित व्यवहार कर, उचित कर्म कर, उचित यत्न कर ।'

यह गायत्री मंत्र दुख का नाश करता है और सुख भी देता है । यह दुःख-सुख क्या है ? सुख और दुःख वास्तव में किसी वस्तु का नाम नहीं है, किसी दशा का नाम नहीं है, किंतु अपने दृष्टिकोण का नाम है । दृष्टिकोण को बदल दो तो बहुत से दुःख सुख में बदल जाएंगे । इंद्रियों की संतुष्टि होना ही सुख है, अर्थात अतृप्ति होना दुःख है । सुख और दुःख दोनों ही देव भाषा संस्कृत के शब्द हैं । 'सु' अर्थात अच्छा और 'दु' का अर्थ है बुरा । 'ख' कहते हैं इंद्रियों को । सुख का अर्थ है अच्छी इंद्रियां

और दुख का अर्थ है बुरी इंद्रियां । अच्छी इंद्रियां कौन होती हैं ? जो अपने बस में हों और खराब वे जो हमें अपने बस में करके नचाती फिरती हैं । माया, मोह, लोभ के चक्कर में मनुष्य न जाने कितने दुःख उठाता है । जीभ का स्वाद तो उसे प्रत्यक्ष नरक में ही ढकेलता रहता है । न जाने क्या-क्या अल्लम-गल्लम वह खाता रहता है । भरे पेट पर भी यदि कहीं हलुवा, मिठाई, चाट, पकौड़ी दिख गई तो लार टपकाने लगता है । यदि केवल स्वाद इंद्रियों को ही बस में कर ले तो न किसी डाक्टर की जरूरत पड़े न वैद्य की ।

यह आनंद देने वाला परमात्मा है । वही सत्-चित्-आनंद है, सच्चिदानंद है । परमात्मा केवल सुख ही नहीं आनंद भी देता है । सुख और आनंद दोनों भिन्न हैं । सुख क्षणिक होता है, कुछ समय तक ही रहता है फिर समाप्त हो जाता है । आनंद वह सुख है जो कभी भी समाप्त नहीं होता । यह आनंद परमात्मा ही दे सकता है । हलवाई की दुकान पर जाकर पोस्टकार्ड लिफाफे मांगो तो वह कहां से देगा । इसी प्रकार डाकखाने में जाकर मिठाई मांगो तो कैसे मिल सकेगी । संसार में सारी भौतिक संपदाएं मिल सकती हैं, उनसे सुख भी मिल सकता है पर आनंद तो तभी मिलेगा जब गायत्री मंत्र की आज्ञाओं का पालन सच्चे मन से करेंगे ।

गायत्री मंत्र हमें शिक्षा देता है कि ब्रह्म, प्रकृति और जीव के आपसी संबंधों को समझते हुए अपना दृष्टिकोण और कार्यक्रम तय करना चाहिए । अग्नि, वायु और जल की उपासना का अर्थ है-तेजस्विता, गतिशीलता और शांतिप्रियता । इन्हें अपने जीवन में अपनाकर स्वयं परिवार एवं समाज में सुख-समृद्धि का वातावरण बनाना चाहिए । संसार में जो कुछ भी है वह परमेश्वर ने तुम्हारे ही लिए रचा है । उसका सदुपयोग करना चाहिए पर किसी भी प्रकार का मोह नहीं । 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' की दृष्टि अपनाकर त्यागपूर्वक भोगना चाहिए ।

इन तीनों व्याहृतियों में ऐसे ही अनेक संदेश हैं । जितने महापुरुष हुए हैं, उन सभी ने इसी प्रकार आचरण करके स्वर्णिम सफलताए अर्जित की

हैं । रामायण, महाभारत, गीता सभी में ऐसे अनेक उदाहरण भरे हैं । राम के बनवास को ही देखो । उनके राज्याभिषेक की घोषणा हो चुकी है । सारे नगर में हर्षोल्लास का वातावरण है, सारी तैयारियां पूरी हो चुकी हैं । राम भी इस दायित्व के लिए मानसिक रूप से तैयार हैं, उस घड़ी की बाट जोह रहे हैं । तभी बज्रपात होता है । उन्हें १४ वर्ष के बनवास का आदेश मिलता है । यह क्या हो गया ? राम का दोष क्या है ? फिर ऐसा निष्ठुर आदेश क्यों माना जाए ? पर नहीं, राम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । किसी प्रकार का माया मोह नहीं । कोई आसक्ति नहीं । पिता की आज्ञा है तो ठीक ही होगी । तुरंत राह बदल दी । जो पग राज सिंहासन की ओर बढ़ रहे थे वही वन की ओर मुड़ गए । आज का जमाना होता तो क्या यह संभव था । राम तो साफ कह देते कि पिताश्री आप सठिया गए हैं । आप ही वन को जाएं और साथ में अपनी केकैयी को भी ले जाएं । रामायण में फिर हमें राम की जगह दशरथ का बनवास पढ़ने को मिलता । वर्तमान काल में ऐसा हो भी चुका है । औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहां को आगरा के किले में कैद कर दिया था । यह भी बाप को बनवास भेजने के ही समान है ।

इन तीनों व्याहृतियों से हमें इसी प्रकार का आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है । सीता का चरित्र देखो । लक्ष्मण, उर्मिला और भरत को देखो, हनुमान, शबरी, जटायु सभी आदर्शवादिता के, तेजस्विता के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं । इनसे हमें यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि सांसारिक पदार्थों में अपने को भुला न दें वरन् उस आदि, स्थिर, शाश्वत शक्ति से आत्मा का संबंध स्थापित करें । क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर चलें । तम से रज की ओर और रज से सत की ओर अपने कदम बढ़ाएं । भूः भुवः स्वः से जो अनेक संकेत हमें मिलते हैं उनका सार है सत्य, प्रेम और न्याय और इन्हें अपने जीवन में अपनाने का सतत प्रयास करते रहना चाहिए । तभी दुःखों का नाश होगा और सुखों की, आनंद की वर्षा होगी ।

अरे भाई ! आज तो बहुत देर हो गई । समय का कुछ ध्यान ही नहीं रहा । अब गायत्री के तीनों पदों के बारे में फिर बात करेंगे ।

"गुरुदेव ! आप इतनी अच्छी तरह समझा रहे हैं कि उठने का मन ही नहीं करता । सचमुच इस मंत्र के गूढ़ रहस्यों पर से पर्दा उठता जा रहा है । लगता है कि ॐ भूर्भुवः स्वः अपने आप में ही एक पूर्ण मंत्र हैं ।" हमने निवेदन किया ।

"हां, बेटे ! जैसे ॐ अपने आप में पूर्ण है, स्वयं में एक समग्र धर्मशास्त्र है, उसी प्रकार ॐ भूः भुवः स्वः भी अपरिमित ज्ञान का सागर है । इसे समझो और अपनाओ तो यह मानव जीवन सफल हो जाए ।" इतना कहकर गुरुदेव उठ गए ।

तत् सवितुर्वरेण्यं

गुरुदेव ने अगले दिन बताया "त्रिपदा गायत्री के इस पद्र में तीन शब्द हैं-तत्, सवितः और वरेण्यं । इसका सीधा सा अर्थ है उस सविता का वरण करो । अब यह 'उस' कौन है ?, 'सविता' क्या है और उनका वरण कैसे करें ?

यह पद तत शब्द से प्रारंभ होता है । इसमें ईश्वर की ओर संकेत किया गया है जिससे परब्रह्म परमात्मा की सर्वव्यापकता को ध्यान में रखकर हम उसी प्रकार बुराइयों से बचें जैसे पुलिस के सामने अपराधियों को दुष्कर्म करने का साहस नहीं होता । इसी से इस पद में कहा गया है तत (उस) परमात्मा का सदा ध्यान रखो । वह हर समय तुम्हारे चारों ओर विद्यमान है, तुम्हारे प्रत्येक कर्म को देख रहा है और उसका फल भी देगा । आज देगा या कल, इसी जन्म में देगा या अगले जन्म में, पर देगा अवश्य । कर्मफल से कोई बच नहीं सकेगा । इसीलिए तत परमेश्वर का सदा ध्यान रखो ।

परमेश्वर के असंख्य गुण हैं , अनेक नाम हैं । एक नाम है-सविता । गायत्री मंत्र कहता है कि उस परमात्मा के सविता रूप का सदा ध्यान रखो । सविता कहते हैं तेजस्वी को, प्रकाशवान को, उत्पन्न करने वाले को । आत्मिक तेज, बौद्धिक तेज, आर्थिक तेज, शारीरिक तेज इन सब तेजों से संपन्न बनने से ही मनुष्य का जीवन तेजोमय बनता

है । ईश्वर की इस तेज शक्ति को धारण करके हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान चमकते रहें, यही भाव इस पद में हैं । सविता सूर्य को भी कहते हैं क्योंकि उसमें भी तेज और प्रकाश के गुण हैं । स्थूल रूप में सूर्य परमात्मा की तेज व प्रकाश की अदृश्य शक्ति को हमारे सामने प्रकट करता है । इस सविता सूर्य को वरण करना चाहिए ।

वरेण्यं से तात्पर्य है जो भी वरण करने योग्य हो, अपनाने लायक हो उसे ले लेना । संसार में असंख्य तत्व हैं जो मनुष्य के लिए उपयोगी भी हैं और अनुपयोगी भी । विवेक बुद्धि से निर्णय करके उपयोगी को ही अपनाएं जो कि लोक मंगल के लिए उपयुक्त हो । जो श्रेष्ठ है उसे ही ग्रहण करें । धर्म, कर्त्तव्य, अध्यात्म, सत, चित, आनंद, सत्य, शिव, सुंदर की ओर जो तत्व हमें अग्रसर करते हैं वे ही वरेण्य हैं । श्रेष्ठता को अपने अंदर धारण करने से, श्रेष्ठता की ओर अभिमुख होने से हमारी ईश्वर प्रदत्त श्रेष्ठता जाग पड़ती है । बाग में असंख्य फूलों की सुगंध बिखरी होती है पर मक्खी को तो केवल गंदगी ही पसंद है । वह बदबूदार गंदी चीजों की ओर ही आकर्षित होती है । पर मधुमक्खी तो ढूंढ-ढूंढ कर फूलों का पराग एकत्रित करती है । बाग से श्रेष्ठतम वस्तु को ही ग्रहण करती है ।

'तत्सवितुर्वरेण्यं' में वेदमाता गायत्री हमें यही आदेश देती है । इसी से हम अपने जीवन को सुख से, आनंद से परिपूर्ण कर सकते हैं ।"

"पर गुरुदेव यह सब कैसे किया जा सकता है ?" हमने जिज्ञासा प्रकट की ।

"अरे यह तो पहले ही बता चुके हैं ।" गुरुदेव ने कहा । "सबसे पहले मन को काबू में करना होता है । माया मोह से अपने को बचाना होता है । अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर लोक मंगल के कार्यों को प्राथमिकता देनी होती है । तब हमारी प्रज्ञा बुद्धि जाग्रत होती है और सत-असत में भेद करने की, पहचानने की क्षमता विकसित होती है । फिर तो परमेश्वर के श्रेष्ठ गुणों को अपनाने में सुगमता भी होती है, सफलता भी

मिलती है और स्वर्गीय आनंद की प्राप्ति भी होती है । यही है तत्सवितुर्वरेण्यं का वास्तविक ज्ञान ।"

"पर गुरुदेव ! इस माया, मोह, लोभ, स्वार्थ आदि से छुटकारा पाना तो बड़ा ही कठिन है ।" हमने अपनी शंका प्रकट की ।

"हां सो तो है । यह बहुत कठिन भी है और उतना ही सरल भी है । केवल अपनी इच्छाशक्ति को प्रबल बनाना होता है । हम जैसा सोचते हैं वैसा बन जाते हैं, जो इच्छा करते हैं वह कर लेते हैं । सिनेमा देखने की इच्छा होती है, क्रिकेट मैच देखना है, चाट-पकौड़ी खाना है सबके लिए समय भी मिल जाता है और साधन भी । हिमालय की चोटी पर, एवरेस्ट पर चढ़ने की इच्छा है तो प्रयास करने पर वह भी हो सकता है । चांद तक भी पहुंच सकते हैं । पर कब कर सकते हैं यह सब । जब मन में इच्छा जाग्रत होगी । किसी काम को करने का विचार बनेगा, फिर प्रयास होगा, असफलता मिलेगी, फिर प्रयास होगा, फिर असफलता मिलेगी, पुनः अधिक जोर से प्रयास होगा और अंततः सफलता हमारे चरण चूमेगी । यह सब प्रबल इच्छाशक्ति से, आत्मबल के जाग्रण से ही संभव होता है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध की एक घटना है । एक सैनिक अधिकारी तीन सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र में सेना की जीप से जा रहा था । शत्रु सेना की ओर से गोलियों की बौछार हो रही थी । अचानक एक बड़े पत्थर से टकराकर जीप उलट गई । पहिए ऊपर हो गए । मजबूत लोहे की चादरों से जीप बनी थी अतः अंदर बैठे लोगों को विशेष चोट नहीं आई । पर अब क्या हो । वहां से निकल सकने का कोई साधन नहीं और हर क्षण मौत का खतरा । वहां वह अधिकारी और तीन सैनिक केवल चार ही थे । बचने का केवल एक ही मार्ग था कि चारों मिलकर जीप को सीधा करें और भाग चलें । पर इतनी भारी जीप जिसे दस-पंद्रह जवान भी मिलकर नहीं उठा सकते, उसे चार व्यक्ति ही कैसे उठाकर सीधा करें । उन चारों ने भगवान का ध्यान करके जोर लगाया । उनका आत्मबल जाग्रत हुआ और इतनी शक्ति उनकी भुजाओं में आई कि उन्होंने जीप को सीधा कर

लिया तथा सकुशल अपने कैम्प तक पहुंच गए । जब यह घटना उन्होंने सुनाई तो किसी को विश्वास ही नहीं हुआ । कप्तान ने कहा कि चारों मिलकर जीप का एक पहिया ही उठाकर दिखा दें । जब उन्होंने बहुत प्रयास किया तो वे जीप के एक पहिए को मुश्किल से दो अंगुल ही उठा पाए । तो बेटे ! यह होता है कमाल प्रबल इच्छाशक्ति का, आत्मबल का, फिर कुछ भी असंभव नहीं रहता । कहीं कठिनाई नहीं आती ।"

भर्गो देवस्य धीमहि

"अब आगे दूसरे पद को देखो । 'भर्गो देवस्य धीमहि'-इसमें भी तीन शब्द हैं । तत सवितुर्वरेण्यं-हमें उस परमात्मा की सविता शक्ति का वरण करना चाहिए । परंतु परमपिता परमेश्वर के तो और भी अनेक गुण हैं । उनका भी तो ध्यान करें ।

'भर्गः' कहते हैं भगवान की उस शक्ति को जो बुराइयों का, अंधकार का नाश करती है । अच्छाई की अपेक्षा बुराई का आकर्षण अधिक चमकदार होता है । अतः बुराइयों का आक्रमण भी बड़ी तेजी और दृढ़ता से होता है । लोग उनके प्रलोभन में आसानी से फंस जाते हैं और एक बार उनके चंगुल में फंस जाने पर उस दलदल से निकल पाना बड़ा कठिन होता है । संसार में दैवी और आसुरी शक्तियां दोनों ही काम करती रहती हैं । यह देवासुर संग्राम हमारे मन में भी चलता रहता है । हम इन आसुरी प्रवृत्तियों को कुचल कर दैवी आचरण कर सकें यह परमेश्वर की भर्गः शक्ति से ही संभव हो सकता है । धैर्य और मनोयोगपूर्वक मानसिक संतुलन बनाए रखकर हमें नित्य ही आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और जो भी दुष्प्रवृत्तियां हों उन्हें बाहर खदेड़ने का प्रयास करना चाहिए । गायत्री में उस ईश्वर के तेजस्वी और श्रेष्ठ अंश को अपने में धारण करने के साथ-साथ यह आदेश भी है कि हम 'भर्ग' को भी अपने में धारण करें, बुराइयों, पापों, दुर्बलताओं, कुप्रवृत्तियों से सावधान रहें ।

'देव' कहते हैं-दिव्य को, अलौकिक को, असाधारण को । हमें अपने में देवत्व को धारण करना चाहिए । दिव्य सिद्धांतों को सामने

रखकर उनके आधार पर अपने कर्त्तव्य का निर्णय करें । जो सत हो, ठीक हो, लोकमंगल का हो, ऐसे कार्य को पूरी लगन से करें । कोई प्रलोभन, कोई आकर्षण, कोई आपत्ति या भय हमें उस कार्य से विचलित न कर सके । भले ही उस मार्ग पर हम अकेले ही हों, सच्चाई के मार्ग को कभी न छोड़ें । 'कोई क्या कहेगा' इससे दुःखी न हों । इस प्रकार हम देवस्य की, देवता बनने की क्षमता अपने में जाग्रत करें । देवता कहते हैं जो देता है । जो अपनी प्रतिभा को, क्षमता को दूसरों के लाभ हेतु देने में सदैव तत्पर रहें । अपनी शक्ति व सामर्थ्य को अपनी स्वार्थपूर्ति, वासनाओं की तृप्ति और छल-कपट में न लगाकर परमार्थ के लिए भी अर्पण करें और दूसरों की सेवा में भी लगाएं ।"

"गुरुदेव आप तो कहते हैं कि हम देवता बनें । पर देवता तो पृथ्वी पर रहते नहीं । वे तो स्वर्ग में रहते हैं और वहां तो मरने के बाद ही जा सकते हैं ।" हमने जिज्ञासा प्रकट की ।

सुनकर गुरुदेव जोर से हंसे और बोले "जिसे तुम स्वर्ग समझते हो, मरने के बाद तो वहां भी नहीं पहुंच सकेंगे । लोगों के आजकल जैसे आचरण हैं वह तो जीते जी नरक के समान ही हैं । देवता स्वर्ग में रहते हैं और स्वर्ग पृथ्वी से ऊपर है । उसका तात्पर्य है कि वे श्रेष्ठ विचारलोक में विचरण करते हैं जो स्वार्थ और संकीर्णता की तुच्छता से बहुत ऊपर है । वही स्वर्गलोक है । देवता और राक्षस दोनों ही इस पृथ्वी पर रहते हैं । यहीं स्वर्ग भी है और नरक भी । हम दिव्य बनें, दिव्य तत्वों से, दिव्य सिद्धांतों से और दिव्य विश्वासों से अपने अंतःकरण को दिव्यता से ओत-प्रोत कर दें तो हम देवता बन सकते हैं ।

'धीमहि' कहते हैं ध्यान करने को । जिस वस्तु का हम ध्यान करते हैं उस पर मन जमता है, मन जमने से उसमें रुचि उत्पन्न होती है, रुचि उत्पन्न होने से उसे प्राप्त करने की आकांक्षा बढ़ती है, आकांक्ष से प्रयत्न उत्पन्न होता है और वह प्रयत्न ही अंततः अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करा देता है । ध्यान बीज है और सफलता उसका फल । कोई भी कार्य पहले

कल्पना में आता है, फिर उसकी योजना बनती है तब वह क्रिया के रूप में प्रकट होता है । वेदमाता ने हमें धीमहि का निर्देश दिया है । हम ध्यान करें ! किसका ? परमात्मा की शक्तियों का । कौन सी शक्तियों का ? सविता का और भर्गः का और देवस्य का । इन सब का ध्यान करने से मन में एकाग्रता आती है, चित्त स्थिर होता है और मन के ऊपर नियंत्रण होता है । मन को जिस कार्य में लगा दिया जाता है, शरीर के अंग भी उसी ओर अग्रसर होते हैं, सहयोग देते हैं । हमारे मस्तिष्क में ईश्वरीय, तेजस्वी, श्रेष्ठ, शक्तिशाली, दिव्य विचारों को ही स्थान मिले जिससे हम आत्मकल्याण और परमार्थ के कार्यों में ही लगें ।''

धियो यो नः प्रचोदयात

अब गायत्री मंत्र के अंतिम पद को भी देखो । हे ईश्वर ! हमारी बुद्धि को प्रेरणा दो । यह बुद्धि क्या है ? 'धी' का अर्थ है बुद्धि, ज्ञान, सोच और विचार । किंतु क्या केवल इसी बुद्धि को 'धी' कहते हैं ? चलो, भगवान ने तुम्हारी बात मान ली, बुद्धि को, ज्ञान को प्रेरणा दी, बहुत विद्वान बना दिया । बड़ा भारी वैज्ञानिक बना दिया । तुमने उस बुद्धि से एटम बम बनाया, हाइड्रोजन बम बनाया । चलो हो गया संसार का सत्यानाश । क्या इसीलिए भगवान से प्रार्थना करें कि वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे । अरे झूठ, फरेब, चोरी, मक्कारी, जालसाजी, बदमाशी यह सब सिखाने के लिए तो चारों तरफ असंख्य व्यक्ति मौजूद हैं । इसके लिए भगवान को क्यों याद करें ? वह तो स्वयं भी यह सब नहीं जानता, फिर हमें सिखाएगा कैसे ? प्रेरणा कैसे देगा ? गोपथ ब्राह्मण में 'धी' का अर्थ बताया है-बुद्धि, कर्म, मेधा । जो बात बुद्धि में आए उसे कर्म में लाना, आचरण में उतारना । इसका वास्तविक अर्थ है कि यदि हम परमात्मा को भूः भुवः स्वः कहते हैं तो स्वयं भी प्रयास करें कि दूसरों के प्राणों की रक्षा हो, उनके दुःख दूर करें, उनको सुख देने का यत्न करें ।

हमारी आत्मा को जिस वस्तु की सबसे अधिक आवश्यकता है वह है 'सद्बुद्धि'-इसी को धियः कहते हैं । गायत्री सदबुद्धि की देवी है । हम

ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हमें सद्बुद्धि दें । केवल मुझे ही नहीं, हमें, हम सबको सद्बुद्धि दें जिससे सभी का कल्याण हो । सभी प्रेम व सहयोग की भावना से रहें । इस प्रेरणा से उत्साहित होकर हम अपने अंतःकरण का निर्माण करने में जुट जाएं । अपनी कुबुद्धि से लड़कर उसे परास्त करें और उसके स्थान पर सद्बुद्धि की स्थापना का पुरुषार्थ दिखाएं ।

भारतीय संस्कृति कर्मवाद की संस्कृति है, उसमें पुरुषार्थ, प्रयत्न, संघर्ष और श्रम करके अभीष्ट वस्तुएं प्राप्त करने का आदेश है । अथर्ववेद में बड़ा ही सुंदर एक मंत्र है । 'श्रयेण तपसा सृष्टा, नृत्ताय हंसाय च'-कोई पूछे कि ईश्वर ने संसार की रचना क्यों की है । तो उसका उत्तर है-इसलिए कि मनुष्य श्रम कर सके और धर्म के मार्ग पर चल सके । श्रम और तप के इस मार्ग पर चलते हुए वह नाचे, हंसे और आनंद के सागर में गोते लगाए । लेकिन यह हंसी, यह आनंद कब संभव है । जब सद्बुद्धि आएगी । इसीसे गायत्री मंत्र में हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें ।

तो बेटा ! यह है इस गायत्री महामंत्र का भावार्थ । यह मंत्र अपने आप में पूर्ण धर्मशास्त्र है । इसके अर्थ का गंभीरता से विचार करने पर तीन तथ्य प्रकट होते हैं-पहला, ईश्वर के दिव्य गुणों का चिंतन, दूसरा, ईश्वर के उन गुणों को अपने अंदर धारण करना और तीसरा, सद्बुद्धि की प्रेरणा के लिए प्रार्थना करना । मानव जीवन के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है । उस सद्बुद्धि से, सात्विक बुद्धि से हमारे मस्तिष्क में घुसे हुए कुविचारों, कुसंस्कारों, नीच वासनाओं तथा दुर्भवनाओं का नाश होता है । सतोगुणी ऋतंभरा बुद्धि से, विवेक से, सद्ज्ञान से जीवन में स्वर्गीय आनंद की प्राप्ति होती है ।

बेटे ! अब तो गायत्री मंत्र का भावार्थ तुम भली-भांति समझ गए होगे ।" गुरुदेव ने अपनी बात को समाप्त करते हुए कहा ।

"हां, गुरुदेव ! यह तो आपने हमें बहुत ही अच्छी तरह से समझा

दिया । इस गुरुमंत्र का भावार्थ पूरी तरह से स्पष्ट हो गया है ।"

"तो अब इस पर खूब चिंतन-मनन करो । यदि कोई संदेह या शंका हो तो फिर हमसे पूछना ।"

गायत्री मंत्र फलीभूत कैसे होता है ?

कुछ दिनों बाद हमने गुरुदेव से पूछा "पूज्यवर ! लाखों व्यक्ति गायत्री मंत्र का जप करते हैं फिर भी सदा कष्ट में ही दिखाई देते हैं । इस मंत्र का कोई प्रत्यक्ष फल तो दिखाई ही नहीं देता । यह मंत्र फलीभूत कैसे होता है ? जैसे आपको यह फलीभूत हुआ है वैसे ही किसी और को भी फलीभूत हुआ है ? कृपया विस्तार से समझाएं ।"

गुरुदेव मुस्कराए "मैं तुमसे इसी प्रश्न की आशा कर रहा था । बेटे तुम ठीक कहते हो । ऐसे लाखों करोड़ों व्यक्ति हैं जो गायत्री मंत्र का जाप करते हैं । एक-तीन-ग्यारह-चौबीस माला तक रोज जपते हैं और अधिक भी जपते हैं पर नतीजा तो बस सिफर ही रहता है । 'न तो माया मिली न राम' वाली स्थिति होती है । ऐसा क्यों होता है ? बेटे, लोग यह जानते ही नहीं कि गायत्री मंत्र का जाप कैसे करें । केवल दिखाने को ही मंत्र जाप होता है । बैठे माला फेर रहे हैं । लोग समझते हैं कि बड़े भारी भक्त हैं । पर सच पूछो तो वे जप कर ही नहीं रहे हैं । माला हाथ में चल रही है, होठों से मंत्र की ध्वनि भी आ रही है । पर मन ! यह मन तो कहीं और घूम रहा है । कभी दुकान का हिसाब देख रहा है, कभी तिजोरी में बंद नोटों को गिन रहा है । कभी अपनी प्रेमिका के चक्कर काट रहा है और कभी अपने बीवी-बच्चों की चिंता में डूबा हुआ है ।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि ।
मनीराम चहुंदिश फिरै, यह तो सिमरन नांहि ॥

तो यह स्थिति है । इस प्रकार तो प्रभु का स्मरण नहीं होता, गायत्री मंत्र का जाप नहीं होता । जब तक एकाग्रचित्त होकर जाप नहीं होगा उसका कुछ भी लाभ नहीं । जाप होता है उस समय जब माला, होंठ,

जिह्वा, कंठ, चित्त और मन सब एक साथ फिरते हैं । सभी एक ताल से, एक स्वर से, एक तरंग से कार्य करते हैं तभी जो जपा जाता है उसका मन पर प्रभाव पड़ता है । मन सात्विक गुणों से भरपूर हो जाता है । ऐसी स्थिति में मन गायत्री मंत्र के आदेशों का, वेदमाता गायत्री के निर्देशों का पालन करने को लालायित हो उठता है । तब इस गुरुमंत्र का फल हमें प्राप्त होता है ।

बेटे ! यह मन बड़ा ही चंचल होता है । इधर-उधर भटकता रहता है । हर समय विषय-वासना में उलझा रहता है । कुविचारों का चिंतन करता रहता है । इसी से तो कहते हैं-

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर ।
मन के मते न चलिए, बिलख-बिलख मन रोय ॥

जब मन की ऐसी अवस्था होगी तो फिर उसके अनुसार चलने पर रोने के अतिरिक्त और क्या बनेगा । सबसे पहले मन को वश में करना होता है । यह कैसे होता है ? यह होता है गायत्री माता की कृपा से, सद्‌बुद्धि से । सद्‌बुद्धि से मन वश में होता है और मन वश में हो जाने से सद्‌बुद्धि का अभिवर्धन होता है । गायत्री मंत्र के निर्देशों का पालन करने में मन लगता है और तब मंत्र फलीभूत होता है ।

मन को वश में करने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ता है । साहस की, पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है । जितने भी महापुरुष हुए हैं सभी ने कठोर संघर्ष करके मन को वश में किया है और सफलता अर्जित की है । गीता में भगवान ने इसी संघर्ष के लिए अर्जुन को ललकारा था । युद्धक्षेत्र में अर्जुन मोहग्रस्त हो रहा था । कौरव सेना में उसके भाई-बंधु, गुरु-आचार्य सभी अपने ही तो थे । फिर उनसे युद्ध कैसे करें ? उनपर शस्त्र कैसे उठाएं ? भगवान कृष्ण ने उन्हें संघर्ष करने को उत्तेजित किया । सत और असत में, नीति और अनीति में भेद करके जो मार्ग उचित था, लोकहित में था उसपर अग्रसर होने की सद्‌बुद्धि जाग्रत की । उन्हें समझाया कि कौरव पक्ष के सारे योद्धा दुराचारी, स्वार्थी और पाखंडी हैं ।

इनकी अनीति से जनता भी दुःखी है । इनको समाप्त कर देना ही जनहित में है और पुण्य कार्य है । जब अर्जुन को सद्बुद्धि आई, साहस व पुरुषार्थ जागा तो महाभारत में अनीति की पराजय हुई और चारों ओर सुख-शांति का वातावरण बना । तो इस प्रकार गायत्री मंत्र फलीभूत हुआ ।

इस चंचल मन को वश में करने के लिए बड़ी ही कठोर एवं कभी-कभी अनोखी साधना करनी पड़ती है । स्वामी विवेकानंद एक बार धर्म प्रचार हेतु विदेश प्रवास पर थे । वे जिस व्यक्ति के घर पर ठहरे थे, उसकी लड़की उनकी ओर आकर्षित हो गई । वह बार-बार स्वामी जी के इर्द-गिर्द भंडराती रहती और सांकेतिक हाव-भाव से अपने विचार प्रकट करती जिससे स्वामी जी का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता । इससे स्वामी जी भी विचलित होने लगे और रात-दिन उसी के विचार मन में चक्कर काटने लगे । उन्होंने अपने मन को वश में करने के बहुत प्रयास किए पर जब सफलता नहीं मिली तो एक अनोखा उपाय किया । उन्होंने लोहे का एक तवा लेकर आग पर गरम किया और जब वह लाल हो गया तो अपने कपड़े उतार कर उस पर बैठ गए । लोगों को पता चला तो उन्हें तुरंत अस्पताल में भरती कराया गया जहां कई दिनों के इलाज से वे ठीक हुए । इस प्रकार स्वामीजी ने अपने चंचल मन को वश में करके एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया । अब तुम्हीं बताओ उन्हें यह गायत्री मंत्र फलीभूत हुआ या नहीं ।

"हां गुरुदेव ! आप ठीक कह रहे हैं । मन को वश में करने के लिए सचमुच बहुत कठोर साधना करनी होती है । पहले जब हम डबरा में थे तो वहां भी ऐसी ही एक घटना हुई थी । आज्ञा हो तो सुनाऊँ ।"

"हां बेटे सुनाओ ।"

गुरुदेव की आज्ञा पाकर हमने वह घटना सुनाई, "पहले जब हम डबरा मिल में थे तो वहां भी सुबह घूमने जाते थे । पास ही एक आश्रम था जहां दो सन्यासी रहते थे । एक बार उधर गए तो वहां पर छोटे सन्यासी ही थे । बड़े सन्यासी जी दिखाई नहीं दिए । पूछने पर छोटे ने

बताया कि वे कोठरी बंद करके साधना कर रहे हैं । कोठरी के दरवाजे के पास कान लगाकर सुना तो अंदर से आवाज आ रही थी 'खाले, खाता क्यों नहीं । खाले, खाता क्यों नहीं ।' तीन दिन तक ऐसे ही चलता रहा । चौथे दिन बड़े सन्यासी जी बाहर बैठे मिले । हमने पूछा कि यह आप कैसी साधना कर रहे थे 'खाता क्यों नहीं, खाले' । स्वामीजी हमें उस कोठरी में ले गए तो वहां हमने देखा कि चारों ओर तरह-तरह की मिठाइयां रखी थीं, कमरा स्वादिष्ट पकवानों की सुगंध से भरा हुआ था । हमने पूछा कि यह सब क्या है तो उन्होंने बताया 'बेटा, हम तो अपने मन को वश में करने की साधना कर रहे थे । जीभ काबू में ही नहीं रहती थी । मन हर समय मिठाई व चटपटी चीजें खाने को लालायित रहता था । इस मन ने हमें अपना गुलाम बना रखा था । सो हमने यह साधना की । चारों ओर मिठाई-पकवान रखके बीच में बैठ गए । साथ में एक गिलास में नीम की पत्तियों का रस भी रख लिया । जब भी मन यह सब खाने को दौड़ता तो मैं मुंह में दो घूंट नीम का रस डाल लेता, फिर मन से कहता 'खा ले, खाता क्यों नहीं'-इसी तरह तीन दिन बीत गए । अब मन पूरी तरह से हमारे बस में है, हमारा गुलाम हो गया है ।''

गुरुदेव यह सुनकर बोले ''हो बेटे ! हम उनके बारे में जानते हैं । तुमने वह गुड़ खाने वाली कथा भी तो सुनी ही होगी ।''

''गुरुदेव ! कुछ ध्यान नहीं आ रहा है ।'' हमने निवेदन किया ।

''एक पहुंचे हुए महात्मा थे । एक बार एक औरत अपने ८-१० वर्ष के पुत्र को लेकर उनके पास पहुंची और कहा कि यह बच्चा गुड़ बहुत खाता है इसे छुड़ाने की कोई तरकीब बताएं । महात्मा जी ने उसे अगले इतवार को आने के लिए कह दिया । अगली बार जब वह आई तो पुनः अगले इतवार को आने को कह दिया । इस प्रकार चार इतवार निकल गए । पांचवी बार जब वह आई तो महात्मा जी ने उसके पुत्र को अपने पास बिठाया, उसकी आंखों में आंखें डालकर बोले 'बेटा गुड़ खाना अच्छी बात नहीं है । इसे मत खाया करो ।' वह औरत बहुत हैरान

हुई और बोली 'बस यही कहना था तो पहले दिन ही कह देते । बेकार ही मुझे पांच बार दौड़ाया । अब इतना कहने से ही क्या होगा । यह तो मैं भी इससे कहती रहती हूं ।' महात्मा जी ने कहा 'बहन, मैं पहले दिन भी यह कह सकता था पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि मैं खुद ही बहुत गुड़ खाता था । इतने दिनों में मैंने अपने मन पर काबू कर लिया है और गुड़ खाना बिल्कुल छोड़ दिया है । अब जब मेरा मन भी पक्का हो चुका है तो मेरे कहने का प्रभाव भी इस बच्चे पर पड़ेगा, देख लेना ।' सचमुच उनके इतना कहने का ही प्रभाव पड़ा और लड़के ने गुड़ खाना छोड़ दिया । तुमने देखा बेटे । मन को वश में करने से कितना प्रभाव बढ़ जाता है । इसी तरह गायत्री मंत्र फलीभूत होता है । पहले स्वयं करो फिर दूसरों से कहो ।

"बेटा बिना संघर्ष के, बिना साहस और पुरुषार्थ के जीवन में कुछ भी नहीं हो सकता । गायत्री मंत्र से हमें यही शिक्षा मिलती है । 'भर्गः' हमें बुराइयों से लड़ने की, अपने को उनसे बचाने की प्रेरणा देती है । आजकल जिधर देखो उधर अनीति अधर्म का राज है । जुए, शराब की बीमारी घर-घर में घुसती जा रही है । इनसे छुटकारा पाने के लिए सभी को संघर्ष करना चाहिए । दहेज की बीमारी तो बहुत बुरी तरह फैल रही है । अब तो लड़कों के रेट तय हो रहे हैं । डाक्टर के इतने लाख, इंजीनियर के इतने लाख । शादी तो जैसे ठगी का एक धंधा ही बन गया है । हमारे समाज में यह कैसी कुरीति घुस आई है । इससे छुटकारा पाने के लिए सभी को एकजुट होकर संघर्ष करना होगा । नवयुवकों को तो इसमें विशेष भूमिका निभानी होगी । उन्हें यह समझना होगा कि वे बिकाऊ माल नहीं हैं और खुलकर इसका विरोध करना होगा ।

तुम्हें एक किस्सा सुनाते हैं । अभी पिछले साल की घटना है । एक सुंदर सुशील लड़की थी । मां-बाप की अकेली संतान । खूब पढ़-लिख कर स्कूल में शिक्षिका बन गई थी । उसकी शादी नहीं हो पा रही थी क्योंकि जहां भी बात चलती, दहेज की मांग इतनी अधिक होती कि मन मारकर रह जाना पड़ता । आखिर उसके माता-पिता ने सोचा कि क्यों न

मकान बेच दें । लड़की की शादी के बाद दोनों तो कहीं भी रह लेंगे । उन्होंने ऐसा ही किया और एक जगह शादी तय कर दी । भांवरों के समय जब लड़की मंडप में आई तो लड़के ने देखा कि लड़की रो रही है । उसने कहा कि शादी तो बाद में होगी पहले वह एकांत में लड़की से बात करना चाहता है । सबने बहुत समझाया पर वह नहीं माना । आखिर दोनों को एक कमरे में बिठा दिया गया । लड़के के बार-बार पूछने पर लड़की ने सब बता दिया कि कैसे दहेज के रुपये चुकाने के लिए उसके पिता ने यह मकान बेच दिया है और अब शादी के बाद वे इसे खाली कर देंगे फिर वह कभी इस घर में वापस नहीं आ सकेगी । उस लड़के ने कुछ देर सोचा और मन ही मन कुछ निर्णय किया तथा उस लड़की से कहा कि वह चिंता न करे । फिर दोनों मंडप में आ गए । विवाह के सभी कर्मकांड पूरे हुए और अंततः बिदा की घड़ी भी आ गई । उस समय वह लड़का अपने रिश्तेदारों को छोड़कर लड़की वालों की तरफ आ गया । उसने सभी बारातियों व संबंधियों को नमस्कार किया और बोला कि आप लोग जाएं मैं तो अब यहीं रहूँगा । सबने समझाया कि यह क्या पागलपन करता है, बहू को लेकर घर चल । इस पर वह बोला कि कैसे चलूं मुझे तो यहां बेच दिया गया है । लड़के के पिता ने कहा 'कहीं कोई पिता अपने पुत्र को बेचता भी है ?' उस लड़के ने कहा 'पिताजी आपने तो मुझे बेच ही दिया है और मेरी कीमत भी दहेज के रूप में ले ली है । अब मैं यहां से नहीं जा सकता ।' सबके समझाने पर अंततः वह बोला कि सारा रुपया वापस कर दें और इनका जो खर्च हुआ है वह वापस कर दें तभी वह यहां से चलेगा । उसके पिता को यह बात माननी पड़ी ।

तो देखो बेटे, उस लड़के में सद्बुद्धि का जगरण हुआ तो अपने बाप की अनीति का खुलकर विरोध करने में उसे तनिक भी झिझक नहीं हुई । ऐसे समाचार अक्सर आते रहते हैं । तुम समाचार पत्र पढ़ते हो । उसमें ध्यान दिया करो ऐसी खबरों पर । जहां चोरी, डकैती, राजनीतिक उथल-पुथल आदि के समाचार छपते हैं वहीं कभी-कभी ऐसे समाचार

भी आते हैं कि अमुक लड़के ने, अमुक लड़की ने ऐसा साहसपूर्ण कार्य किया। खेल-कूद में नाम कमाना या कठिनाइयों में एक दूसरे की सहायता करना तो प्रशंसनीय होता ही है पर उससे भी कहीं अधिक प्रशंसनीय है समाज में व्याप्त बुराइयों से टक्कर लेना, प्रचलित कुप्रथाओं को तोड़ना। जो भी ऐसा कर लेता है समझो उसे गायत्री मंत्र फलीभूत हो रहा है। यह मंत्र फलीभूत होता है गायत्री माता के निर्देशों का पालन करने से, केवल जपने से तो कुछ भी नहीं होता।

बेटे, रामचंद्र जी ने गुरु वशिष्ट के आश्रम में रहकर गायत्री मंत्र की साधना की थी। संदीपन ऋषि ने भी श्री कृष्ण जी को इसी मंत्र की साधना कराई थी। इन दोनों ने ही इस मंत्र को अपने जीवन में उतार लिया था। हर कार्य उसी के निर्देशों के अनुसार करते थे तभी तो महापुरुष हुए और आज हजारों साल बाद भी उनकी पूजा की जाती है। पर केवल पूजा ही मत करो, उनकी तरह अपना आचरण भी तो बनाओ। गांधी जी ने भी इसी मंत्र का जाप किया था तो वे कितने महान बन गए थे।

एक बार गांधीजी को दिल्ली के तिबिया कालेज में विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया। कालेज का उद्घाटन समारोह था। वहां अधिकतर मुसलमान ही थे। गांधीजी ने दीप जलाकर उद्घाटन किया और फिर गायत्री मंत्र के सिद्धांतों पर प्रकाश डालना प्रारंभ कर दिया। वहां उपस्थित मुसलमानों ने इसका विरोध करते हुए कहा कि यह तो हिंदुओं का मंत्र है। वे तो मेडिकल कालेज के छात्रों को स्वास्थ्य संबंधी बातें ही बताएं। इस पर गांधीजी ने कहा कि गायत्री मंत्र केवल हिंदुओं का ही नहीं वरन संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। इसका चिंतन-मनन व ध्यान करने से, इसके आदेशों व निर्देशों का पालन करने से मनुष्य सदा स्वस्थ व सुखी रहता है। इससे बुद्धि शुद्ध होती है। जो भी इसे अपने अंत:करण में धारण करता है वह कभी रोगग्रस्त हो ही नहीं सकता। जो भी रोगी होता है उसे दवा देते हैं। पर यदि रोगी नियम-संयम का पालन न करे, उचित परहेज न करे तो फिर दवा क्या कर लेगी। रोग दवा से तो ठीक भी नहीं होते। वे ठीक होते हैं उचित

आचरण और परहेज से, शुद्ध आहार-विहार से। दवा तो केवल इसमें कुछ सहयोग भर ही देती है। लोग तो अधिकतर अपनी मानसिक परेशानियों के कारण ही बीमार पड़ते हैं। इस मंत्र के प्रभाव से उसकी सारी मानसिक परेशानियां दूर हो जाती हैं।

अस्पताल और डाक्टरों की बात चली है तो बेटे तुम्हें एक कथा सुनाते हैं। एक बार एक राजा जंगल में शिकार को गया। लौटते में देर हो गई तो रास्ते में एक गांव में रुक गया। गांव वालों ने राजा की खूब सेवा की जिससे वह बहुत प्रभावित हुआ। वापस आकर उसने सोचा कि गांव वालों के लिए कुछ करना चाहिए और उस गांव में अस्पताल बनवा दिया। अस्पताल बन गया तो वहां कई योग्य डाक्टर भी नियुक्त कर दिए। अस्पताल खुले धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया, पर उस अस्पताल में एक भी रोगी नहीं आया। डाक्टर भी बैठे-बैठे ऊब गए। उन्होंने राजा से आकर सारी बातें बताईं तो राजा बड़ा क्रोधित हुआ कि उसने तो गांव वालों के भले के लिए यह अस्पताल बनवाया था और वे वहां इलाज को जाते ही नहीं। पता करने पर ज्ञात हुआ कि वहां कभी कोई बीमार ही नहीं पड़ता। सभी दिन भर कड़ी मेहनत करते हैं। आदमी-औरत, बच्चे-बूढ़े सभी श्रमदेवता की उपासना करते हैं और कभी भी रोगी नहीं होते। राजा भी उन गांव वालों के समक्ष नतमस्तक हो गया और कहने लगा कि सभी इसी तरह श्रमशील हो जाएं तो देश का काया पलट ही हो जाए।

परंतु बेटे आजकल तो लोग अपने हाथ से अपना स्वयं का कार्य भी नहीं करना चाहते। हर समय आराम ही चाहिए उन्हें। लोग तरह-तरह की सुख-सुविधा के साधन एकत्रित करते जा रहे हैं और उसी अनुपात में उनके रोग भी बढ़ते जा रहे हैं। अस्पतालों में ऐसी भीड़ रहती है मानो वहां मुफ्त का माल बंट रहा है। लोगों में बीमार पड़ने और ऊंचे-ऊंचे डाक्टरों से इलाज कराने का भी एक फैशन चल पड़ा है। यह सब इसीलिए तो होता है कि गायत्री मंत्र के निर्देशों का लोग पालन नहीं करते। सविता सूर्य की भांति सदा नियम पूर्वक श्रम नहीं करते तभी तेज

व प्रकाश उनमें उत्पन्न नहीं होता ।

तो बेटा देखा तुमने कि यह मंत्र कैसे फलीभूत होता है । रावण ने भी बड़ी भारी उपासना-साधना की थी । सर्वश्रेष्ठ विद्वान था । अतुलित धनबल, शरीरबल का स्वामी था परंतु गायत्री मंत्र का जप नहीं किया । सद्‌बुद्धि उसमें थी नहीं और उसका क्या परिणाम हुआ ? भस्मासुर ने कितनी कठोर तपस्या की थी, भगवान को प्रसन्न कर लिया । परंतु उसमें सद्‌बुद्धि का जागरण तो हुआ ही नहीं । स्वार्थ और ईर्ष्या के वश में उसने भगवान से कैसा वरदान मांगा कि वह स्वयं ही उससे भस्म होकर नष्ट हो गया ।

गायत्री मंत्र का जाप भी करो, उसके अनुसार अपना आचरण भी रखो यह तभी फलीभूत होता है । आज चारों ओर जो अनाप-शनाप वैचारिक प्रदूषण फैल रहा है उसके चक्कर में पड़कर कहीं तुम भी गायत्री माता को भूल न जाना ।''

''नहीं गुरुदेव ! हम तो रोज ही सुबह-शाम गायत्री माता की मूर्ति के सामने सिर नवाते हैं ।' हमने आश्वासन दिया ।

''वाह बेटे, गायत्री की मूर्ति के सामने केवल सुबह-शाम सिर झुकाने से क्या होगा । उसे तो चौबीस घंटे, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय सिर झुकाना होता है ।''

''गुरुदेव फिर और काम कब करेंगे ?''

अच्छा तो इसकी तरकीब कल बताएंगे, तुम भी सोचना ।'' और उस दिन की चर्चा समाप्त हुई ।

यज्ञोपवीत

अगले दिन गुरुदेव ने हमसे पूछा ''कुछ समझ में आया कि हर समय गायत्री माता के सामने सिर झुकाए रहने का क्या रास्ता है ।''

''गुरुदेव आप ही बताएं ।'' हमने निवेदन किया ।

''बेटे यह तो तुम समझ ही गए कि हमें हर समय, हर स्थिति में, विषम से विषम परिस्थिति में भी गायत्री माता को नहीं भूलना चाहिए । इस मंत्र के अनुसार कार्य करने से सर्वत्र सफलता मिलती है । इससे यह

निष्कर्ष निकलता है कि हमें गायत्री माता के समक्ष पूर्ण रूप से अपना समर्पण कर देना चाहिए । अपने को उससे बांध देना चाहिए जिससे कभी भी मां से संबंध विच्छेद होने की संभावना न रहे । और यह बंधन कभी भी लोहे की जंजीरों से नहीं होता । स्थायी बंधन तो सदा ही कच्चे धागे का होता है । जो यज्ञोपवीत के धागे तुम्हारे शरीर को बांधे हैं उनका यही तात्पर्य है । यही गायत्री माता की मूर्ति है जो हर समय तुम्हारे साथ रहती है । गर्दन पर, पीठ पर, छाती पर हर समय मां की मूर्ति तुम्हारे साथ है । तुम्हारा मार्गदर्शन भी करती है और समय पड़ने पर रक्षा भी ।

यज्ञोपवीत में एक ब्रह्मग्रंथि और तीन देवग्रंथियां लगती हैं । गायत्री मंत्र के तीन चरण यज्ञोपवीत के तीन धागे हैं । प्रत्येक चरण में तीन शब्द हैं, इसी से प्रत्येक धागे में तीन-तीन धागे होते हैं । कुल नौ धागे होते हैं । यही गायत्री माता की प्रतिमा है जिसे शरीर रूपी देव मंदिर में प्रतिष्ठापित किया जाता है । और प्रतिमाएं तो धातु, पाषाण की बनती हैं तथा मंहगी भी होती हैं । परंतु यज्ञोपवीत के रूप में गायत्री माता की यह सर्वसुलभ प्रतिमा अमीर-गरीब सभी को अपना आशीर्वाद एक समान देती रहती है । इस मूर्ति को हर समय छाती से चिपकाए रहने, पीठ पर लादे रहने और कंधे पर उठाए रहने से गायत्री मंत्र में सन्निहित शिक्षाओं तथा प्रेरणाओं को हृदयंगम किए रहने और अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहने में सहायता मिलती है । गायत्री माता अपने आदर्शों और मर्यादाओं में हमारे शरीर को बांधे रहती है, जकड़े रहती है । जिस प्रकार मां की उंगली पकड़े रहने से बच्चे का आत्मविश्वास बना रहता है, उसी प्रकार यज्ञोपवीत से हमारे आत्मबल की वृद्धि होती है ।

यज्ञोपवीत का प्रत्येक धागा एक आत्मिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करने, धारण करने और निबाहने का एक शपथ संस्कार है । जीवन में नौ प्रमुख धर्म कर्त्तव्य माने जाते हैं । यह सत्प्रवृत्तियां हैं श्रमशीलता, शिष्टता, मितव्ययता, सुव्यवस्था, विवेकशीलता, इंद्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम । इन्हें सदैव अपनाए रखना अत्यंत आवश्यक

है । समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को अपने स्वभाव का अंग बना लेने से इनका पालन करना सरल हो जाता है तथा हर जगह सम्मान व सफलता मिलती है । मस्तिष्क ज्ञान का और शरीर कर्म का आधार है । दोनों पर ही शिखा व सूत्र के रूप में गायत्री की प्रतिष्ठापना की गई है ।

तो देखा बेटे, इसी प्रकार गायत्री माता की मूर्ति को चौबीस घंटे अपने साथ रखते हैं । इस यज्ञोपवीत को पुरुष व महिलाएं दोनों ही धारण कर सकते हैं और करना भी चाहिए । कुछ धर्माचार्यों ने यह मिथ्या प्रचार कर दिया है कि औरतों के लिए गायत्री मंत्र के उच्चारण व पालन का निषेध है । पर इस बात का कोई भी आधार नहीं है । मां के लिए तो पुत्र और पुत्री दोनों ही बराबर हैं । फिर पुत्री को मां से प्यार करने का निषेध कैसे हो सकता है । यह सद्बुद्धि की नहीं, कुबुद्धि की बात है । सफाई व सुरक्षा का ध्यान तो सभी को रखना होता है और समय-समय पर यज्ञोपवीत को बदला भी जाता है । बस यही सतर्कता पुरुषों व स्त्रियों दोनों को ही रखनी होगी ।''

''गुरुदेव यह तो आपने बहुत ठीक बात बताई है । लोगों ने अकारण ही यह भ्रम पाल रखा है कि औरतों को गायत्री मंत्र का जाप व उच्चारण नहीं करना चाहिए ।'' हमने कहा ।

''संभवत: यह उस सामंतशाही युग की देन है जब औरतों को गुलाम बनाकर रखा जाता था । लोग सोचते होंगे कि औरत को यदि सद्बुद्धि आ जाएगी तो उसका उत्पीड़न करना आसान नहीं होगा ।''

अमृत, पारस और कल्पवृक्ष

''गुरुदेव ! एक बार आपने बताया था कि इस त्रिपदा गायत्री की उपासना करने से अमृत, पारस और कल्पवृक्ष, ये तीन फल प्राप्त होते हैं । क्या हम इससे सचमुच ही अमर हो सकते हैं ?'' हमने गुरुदेव के समक्ष शंका व्यक्त की ।

''हां बेटे, सो तो है । हम इससे सचमुच ही अजर अमर हो सकते हैं । हो क्या सकते हैं, हम तो पहले से ही हैं पर इस बात को समझते ही नहीं ।

गायत्री उपासना से हमें इस तथ्य को समझने की सद्बुद्धि मिलती है ।"

"इसमें क्या रहस्य है पूज्यवर, कृपया विस्तार से समझाएं ।" हमने आग्रह किया ।

"देखो बेटे ! यह अमृत, पारस और कल्पवृक्ष किसी वस्तु या वृक्ष के नाम नहीं हैं । यह तो तीन दिव्य विभूतियां हैं जो गायत्री उपासना से हमें प्राप्त होती हैं और हमारे जीवन को स्वर्गीय आनंद से परिपूर्ण कर देती हैं । जब हम एकाग्र चित्त होकर उपासना करते हैं, गायत्री माता से अपना तारतम्य स्थापित करते हैं तो क्या होता है ? पहले इसे समझो ।

उपासना से हमारा परमेश्वर से संपर्क होता है और संपर्क से आत्मबल का संवर्धन होता है । आत्मबल बढ़ने से हमारा जीवन सुव्यवस्थित और परिष्कृत होता है जिसके फलस्वरूप प्रखरता, प्रामाणिकता और प्रतिभा की प्राप्ति होती है, जिससे हमें जनसम्मान एवं जनसहयोग मिलता है, पग-पग पर सफलताएं मिलती हैं, यश एवं कीर्ति मिलती है । इस प्रकार हम सतत प्रगति पथ पर अग्रसर होते हुए भौतिक समृद्धियों और आत्मिक विभूतियों को सहज ही प्राप्त करते चले जाते हैं, जीवन लक्ष्य की पूर्णता के निकट बढ़ते जाते हैं । मनुष्य यही तो चाहता है कि अनेकानेक भौतिक सुख-सुविधाएं उसे मिल जाएं और विपत्ति-बाधाओं का निराकरण भी हो जाए । गायत्री उपासना से उसके ये दोनों प्रयोजन पूरे हो जाते हैं । यही अमृत, पारस और कल्पवृक्ष हैं ।

अमृत कोई पदार्थ न होकर चेतना की स्थिति ही है । कहते हैं कि अमृत पीने वाला अजर-अमर हो जाता है, बुढ़ापा व मृत्यु उसके पास नहीं आते, नवयौवन सदा बना रहता है । उसका अंतःकरण सदा आनंद व उल्लास से पुलकित रहता है । पर यह सब कैसे हो सकता है ? संसार में कहीं भी अमृत की उपस्थिति का साक्ष्य नहीं मिलता । जो भी मनुष्य जन्म लेता है वह बूढ़ा होता है और मृत्यु को प्राप्त होता है । मनुष्य का जीवन सौ वर्ष का कहा गया है । वेदों ने 'जीवेम शरदः शतम' का उद्घोष किया है । पर आज तो पचास तक पहुंचने पर ही लोगों को

बुढ़ापा आ घेरता है । बिरले ही सौ को पार कर पाते हैं पर अमर तो कोई भी नहीं रहता ।

यह बुढ़ाता और मरता कौन है ? हम । यह हम कौन है ? क्या हमारा शरीर ? नहीं । तो फिर क्या हमारा मन ? नहीं, यह भी नहीं । तो फिर आत्मा ? हां, यह आत्मा ही तो हमारे शरीर के भीतर परमात्मा का अंश है । यह अजर है, अमर है, इसकी मृत्यु नहीं होती । मरता तो केवल यह शरीर है । आत्मा तो शाश्वत है । एक शरीर के समाप्त होने पर दूसरा शरीर धारण करता है । हम भ्रमवश शरीर को ही सब कुछ मान बैठे हैं । आत्मा की ओर ध्यान ही नहीं देते । जब यह ज्ञान हमें हो जाता है तो हम समझ जाते हैं कि हम तो शरीर नहीं हैं, हम तो आत्मा हैं, हम तो अमर हैं । इस चेतना का जागरण ही अमृत्व की उपलब्धि है ।

गायत्री उपासना से हमें यही प्रेरणा, दिशा एवं सुविधा प्राप्त होती है । गायत्री को कामधेनु भी कहते हैं । कामधेनु गाय का दूध भी अमृत समान माना गया है । इसके पीने से दुर्भावनाएं हमारे ऊपर हावी नहीं हो पातीं । कहा जाता है कि देवता लोग कामधेनु गाय का दूध पीते हैं । यह अलंकारिक वर्णन है । हम भी अपने अंदर ऐसी ही चेतना जाग्रत कर लें तो हम भी देवता बन सकते हैं । अमृत्व और देवत्व एक ही बात है । देवताओं को मनुष्य की अपेक्षा अधिक समर्थ, संपन्न और संतुष्ट माना गया है । दे देने की आकांक्षा रखना, देते रहना देवताओं का धर्म है । जब गायत्री माता की कृपा से हमारे भीतर यह आत्मज्ञान जागृत हो जाता है तो देवत्व की, अमृत्व की सहज ही उपलब्धि हो जाती है ।"

"तो गुरुदेव क्या पारस पत्थर भी कहीं नहीं होता ।" हमने जिज्ञासा प्रकट की ।

गुरुदेव हंसे और बोले "क्या सोना बनाने का धंधा करने की इच्छा है । यदि ऐसा है तो फिर निराशा ही हाथ लगेगी । आज तक तो कहीं पारस पत्थर के अस्तित्व का पता चला नहीं है । कुछ काल्पनिक कहानियों में अवश्य इसका वर्णन आता है । तुम खोज सको तो खोज

लेना । कहा जाता है कि पारस पत्थर के छू लेने से लोहे जैसी काली-कलूटी, कुरूप और सस्ती धातु भी सोने के समान सुंदर, बहुमूल्य और चमकदार बन जाती है । गायत्री उपासना से हमें पारस की प्राप्ति होती है- इसका तात्पर्य यह है कि हमें पारस पत्थर की शक्ति प्राप्त हो जाती है और हम अपने संपर्क में आने वाले हर व्यक्ति को आध्यात्मिक दृष्टि से सुंदर, बहुमूल्य व चमकदार बना सकते हैं । हमारा पुरुषार्थ ही वह पारस है जो संकल्प, साहस, उल्लास, आशा, उमंग आदि की अंत:क्षमताओं के रूप में विकसित होता है, आलस्य, प्रमाद, आत्महीनता व असंयम को नष्ट करता है । पारस का महत्व इसीलिए है कि वह लोहे की तुच्छता को सोने की महानता में बदल देता है । पुरुषार्थ जगने पर अंधेरे में भटका हुआ वर्तमान उज्जवल भविष्य में परिणित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है । तो बेटे ! तुम्हें कौन सा पारस चाहिए ।

"गुरुदेव यह पुरुषार्थ का पारस ही सर्वोत्तम है । यह तो हमारे लोक परलोक दोनों को स्वर्णिम आभा से आलोकित कर सकता है ।" हमने निवेदन किया ।

गुरुदेव मुस्कराए और आगे बोले "बेटे ! यही बात कल्पवृक्ष के संबंध में भी है । कहते हैं कि स्वर्ग में कल्पवृक्ष है जिसके नीचे बैठकर जो भी कामना की जाए वह पूरी हो जाती है । पर ऐसा तो कहीं दिखाई ही नहीं पड़ता । हां यह अवश्य है कि मनुष्य ने अपनी कामनाओं को इतना अधिक विस्तार दे दिया है कि सचमुच का कल्पवृक्ष होता तो वह भी उन्हें पूरा नहीं कर पाता । यह कल्पवृक्ष वस्तुत: परिष्कृत व्यक्तित्व का अलंकारिक रूप है । ऐसा व्यक्ति ओछा व निरर्थक चिंतन नहीं करता । मनुष्य जीवन की आवश्यकताएं बहुत थोड़ी हैं । उसका पेट छोटा और हाथ तथा मस्तिष्क का मिला जुला उत्पादन इतना अधिक है कि थोड़े से ही समय एवं श्रम से सभी शारीरिक आवश्यकताएं सहज ही पूरी हो सकती हैं । वह तो अनावश्यक कामनाओं के बोझ को अपने पर लादे घूमता है और उनकी पूर्ति के लिए उचित, अनुचित हर साधन अपनाता

है । औसत भारतीय के स्तर की आवश्यकताएं ही यदि पर्याप्त समझी जाएं तो जरा भी कठिनाई नहीं होगी । पर निरर्थक कामनाओं को बढ़ाते जाना और उनको तुरत-फुरत पूरी करने के लिए आकुल-व्याकुल रहना, केवल विपत्तियों को आमंत्रण देना है । देवी-देवताओं के आगे नाक रगड़ने से भी कुछ होने वाला नहीं ।

देव बुद्धि के देवता लोग अपने को इस जंजाल से बचाकर रखते हैं । वे अपने परिष्कृत व्यक्तित्व रूपी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर अत्यंत आवश्यक और सीमित कामनाएं ही करते हैं जो कि स्वत: ही पूरी हो जाती हैं । उन्हीं को निष्काम भी कहते हैं । गायत्री माता की कृपा से, सद्बुद्धि से यह निष्काम भाव जाग्रत होता है । यही कल्पवृक्ष है । गायत्री की उपासना से अमृत, पारस व कल्पवृक्ष की जो तीन विभूतियां मनुष्य को प्राप्त होती हैं उनसे वह निश्चिंत रहता है, निर्द्वंद्व विचरता है और शांतिपूर्ण जीवनयापन करता है ।''

''गुरुदेव ! यह तो आपने बहुत अच्छी बात बताई । अमृत, पारस व कल्पवृक्ष के बारे में तो हम बड़े भारी भ्रम में थे । वह अंधेरा छंट गया ।'' हमने निवेदन किया ।

''अच्छा तो आगे फिर कभी चर्चा करेंगे ।''

जप का प्रभाव

''गुरुदेव ! कई लोग पूछते हैं कि गायत्री मंत्र को बार-बार जपने का क्या लाभ ? एक बार अच्छी तरह से समझ लिया तो उसका प्रभाव बना ही रहेगा । क्या यह बात ठीक है ?'' हमने गुरुदेव के समक्ष अपनी शंका रखी ।

गुरुदेव हंसे और बोले ''अरे कभी बीमार पड़ जाओ तो दवा खानी पड़ती है न । क्या एक बार दवा खाने से ही काम चल जाता है ? दिन में दो-तीन बार और कई-कई दिनों तक खाते हैं, जब तक रोग पूरी तरह से समाप्त न हो जाए । एक बार ही खा लेने से प्रभाव नहीं पड़ता । भोजन भी तो बराबर प्रतिदिन लेना होता है । इसी प्रकार गायत्री मंत्र का जाप व ध्यान भी बराबर करना होता है । इससे मन के रोग दूर होते हैं, वह स्वच्छ और

निर्मल बन जाता है । जब-जब बुराइयों का दुष्प्रवृत्तियों का आक्रमण होता है यह मंत्र उनके विष को समाप्त करके हमारी रक्षा करता है ।

सांप और नेवले की लड़ाई कभी देखी है । जंगल में अक्सर यह होता है । विषैला सांप नेवले पर हमला करता है । नेवला उसपर झपटता है । अपने दांतों व नाखूनों से सांप को लहूलुहान कर देता है । सांप भी पैंतरा बदल कर विषैले दांतों से नेवले को डस लेता है । नेवले के शरीर में विष का प्रभाव होने लगता है पर वह अपनी सद्बुद्धि को नहीं छोड़ता, विवेक को नहीं छोड़ता, मुसीबत में तनिक भी नहीं घबराता । उसे पता है कि जंगल में एक बूटी है जिसे रगड़ने से विष का असर समाप्त हो जाता है । वह लड़ाई छोड़कर भागता है और अपने शरीर के डसे हुए भाग को उसी बूटी से रगड़कर विष के प्रभाव को समाप्त कर देता है । वह फिर आकर सांप को ललकारता है, उसे लहूलुहान कर देता है । सांप फिर डसता है । नेवला फिर भाग कर बूटी से शरीर को रगड़कर विष को प्रभावहीन कर देता है । तीन चार बार यही सब होता है और अंत में नेवला सांप के टुकड़े-टुकड़े कर देता है ।

इसी प्रकार हमारे भीतर भी देवासुर संग्राम होता रहता है । कुविचार और दुष्प्रवृत्तियाँ सांप के समान बार-बार हमारे ऊपर आक्रमण करते हैं और अपना विष हमारे शरीर में फैलाते रहते हैं । नेवले के समान हमें भी वह बूटी चाहिए जो उस विष को समाप्त कर सके । वह बूटी है गायत्री मंत्र की । बार-बार इस बूटी से अपने शरीर को रगड़ते रहने से वह विष समाप्त हो जाता है । गायत्री मंत्र के सतत जाप का यही प्रभाव है । इसी से बराबर गायत्री मंत्र का जाप करते रहना चाहिए ।

उपासना कैसे करें ।

"गुरुदेव ! एक बात और बताएं । लोग अक्सर कहते हैं कि उपासना के लिए न तो समय मिलता है और न ही उचित स्थान । छोटे-छोटे घर हैं, वहां कई लोग रहते हैं पूरा परिवार है । ऐसे में उपासना व जप के लिए एकांत ही नहीं मिलता । फिर क्या करें ?" हमने जिज्ञासा प्रकट की ।

"यह तो आज की बहुत गंभीर समस्या है लेकिन इसका समाधान भी बड़ा सरल है । उपासना के लिए साफ-सुथरा स्थान हो, एकांत हो

और आसन लगाकर एकाग्रचित्त होकर बैठने की सुविधा हो तो फिर बात ही क्या है । इस प्रकार बैठकर उपासना व ध्यान करने से मन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है । परंतु यह सुविधा न मिले तो क्या कुछ भी न करें ।

एक घुड़सवार एक बार कहीं जा रहा था । घोड़ा बहुत प्यासा था, हांफ रहा था, पर रास्ते में कहीं पानी दिखाई नहीं दे रहा था । अचानक उसने देखा कि एक खेत के किनारे बैठा किसान रहट से कुएं से पानी निकाल कर खेत को सींच रहा है । बैल चल रहे थे, रहट की माला नीचे जाती थी, पानी लेकर ऊपर आती थी, पानी नीचे गिरकर नाली में होकर खेत में पहुंच रहा था । रहट चलने से चीं-चीं की आवाज हो रही थी । उसने घोड़े को पानी पिलाने के लिए आगे बढ़ाया, घोड़ा रहट की आवाज से डरकर पीछे हट गया । उसने फिर प्रयास किया, वह फिर पीछे हट गया । वह सवार लगाम पकड़कर खड़ा हो गया । थोड़ी देर बाद किसान ने कहा खड़े क्यों हो, घोड़े को पानी क्यों नहीं पिलाते ।' सवार बोला 'यह चीं-चीं बंद हो जाए तो पानी पिलाऊं ।' इस पर किसान हंसा और बोला 'अरे यह चीं-चीं बंद हो जाएगी तो पानी भी बंद हो जाएगा फिर क्या पिलाओगे । अगर पिलाना है तो इस चीं-चीं में ही पिला लो ।'

तो बेटे यही तत्व की बात है । जगह नहीं है, शोर है, सारा परिवार उसी कमरे में रहता है, सब जगह चींचीं हो रही है । पर यदि उपासना करनी है, साधना करनी है, ध्यान करना है, जप करना है तो इसी चीं-चीं में करना होगा । बच्चों की चीं-चीं में ही मन के घोड़े को पानी पिलाना होगा ।

जहां भी हो, जैसे भी हो, जिस स्थिति में भी हो, हर समय गायत्री माता को ध्यान में रखो । बस में, ट्रेन में, कारखाने में, बाजार में, घर में हर समय चीं-चीं के बीच इसका ध्यान करो । जब भी समय मिले जप करो । यही सच्ची गायत्री उपासना है ।

"गुरुदेव यह तो बड़ा ही कठिन कार्य है । कहना तो सरल है पर करना असंभव सा लगता है ।" हमने आशंका व्यक्त की ।

"हां बेटे ! हर कार्य कहने में आसान और करने में कठिन होता है । पर जब करने का मन बना लोगे तो वह स्वतः ही सुगम व सरल हो जाएगा । अच्छा भक्त प्रह्लाद के बारे में तो जानते ही हो । उससे अधिक

विषम परिस्थितियां किसके समक्ष रही होंगी । कहां एक छोटा सा बालक और कहां एक सर्वशक्तिमान सम्राट, जिसके भय से मनुष्य ही नहीं जीव-जंतु तक कांपते थे । सारे राज्य में भगवान का नाम लेने पर मृत्युदंड देने का विधान था । लोग हर समय 'हिरण्यकश्यप नमः' का ही जाप करते थे । प्रह्लाद तो उस निरंकुश शासक का पुत्र था । घर-बाहर हर जगह, हर समय उसे यही सब सुनने को मिलता था । जिसका बाप ही इतना कुबुद्धिग्रस्त हो उस नन्हें से बालक की विषम परिस्थितियों की कल्पना करो । पर प्रह्लाद पर गायत्री माता की कृपा थी, उसमें सद्‌बुद्धि का जागरण हुआ था, उसने विवेक से विचार करके अपने पिता की क्रूरता की निस्सारता को समझा था और ईश्वर भक्ति के सच्चे मार्ग पर चल पड़ा था । उसके दृढ़ निश्चय को क्या कोई डिगा सका था ? नहीं, उसके पिता की समस्त क्रूर शक्तियां भी उसे विचलित नहीं कर सकीं और अंत में विजय किसकी हुई-सद्‌बुद्धि की ।

तो बेटे, प्रयास तो करना ही पड़ेगा । चीं-चीं और चिल्ल-पों के कारण यदि कुछ भी न किया तो फिर केवल पछताना ही पड़ेगा । यह हो सकता है कि प्रह्लाद की भांति पूर्ण सफलता न मिले पर कुछ न कुछ लाभ तो होगा ही । जो भी थोड़ा बहुत फल मिलेगा वह गायत्री की पंचकोशी साधना का व्यवहारिक रूप ही होगा ।

पंचकोशी साधना

"गुरुदेव ! यह पंचकोशी साधना क्या होती है ?"

"देखो बेटे, गायत्री मंत्र का केवल जप करना ही काफी नहीं होता । जप और ध्यान करने से हमारी मनोभूमि शुद्ध होती है । खेत जोतने का जो कार्य हल-बैल द्वारा संपन्न होता है वही जप व ध्यान से पूरा होता है । हमारी मनोभूमि कुविचारों व दुश्प्रवृत्तियों के झाड़-झंकाड़ से मुक्त हो जाती है । परंतु इतना ही काफी नहीं है । खेत की जुताई के बाद उसमें बीज बोना, सींचना, खाद देना, निराई करना और रखवाली की भी तो आवश्यकता होती है । ये पांच कार्य करने पर ही अच्छी फसल के दर्शन होते हैं । इसी प्रकार जप व ध्यान से परिमार्जित मनोभूमि में भी पांच

संस्कारों की आवश्यकता होती है । यही पंचकोशी साधना है । हमारी आत्मा पर पांच आवरण होते हैं जैसे हमारे शरीर विभिन्न कपड़ों के आवरण से ढंके रहते हैं । इन आवरणों को क्रमशः हटाते हुए आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार करना ही साधना का वास्तविक लक्ष्य है । आत्मा के ये पांच आवरण हैं, अन्नमय कोष, मनोमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश ।''

''यह तो गुरुदेव आपने और भी झंझट खड़ा कर दिया । कहां तो जप ध्यान के लिए भी समय निकालना कठिन होता है और आप अब कह रहे हैं कि पंचकोशी साधना करो । आम आदमी के लिए यह सब कैसे संभव होगा ?''

गुरुदेव हंसे और बोले ''अरे नहीं बेटे ! इसमें कोई झंझट नहीं है । छोटे से प्रह्लाद ने जब यह कर लिया तो फिर किसी को इसमें क्या कठिनाई होगी । यह पंचकोशी साधना तो सर्वसाधारण के लिए, बाल-वृद्ध, नर-नारी, गृही-विरागी सभी के लिए अति सरल और सर्वथा हानिरहित है । थोड़ा सा समय लगाकर कोई भी व्यक्ति इसे बड़ी सरलतापूर्वक अपना सकता है । इस पर अग्रसर होते हुए सामान्य व्यक्ति भी अंततः उस स्थिति को पहुंच जाएगा जहां से आत्मसाक्षात्कार की संभावना पूरी तरह स्पष्ट हो । आध्यात्मिक विचारों को व्यवहारिक रूप में परिणत करने का नाम ही पंचकोशी साधना है । इससे आत्मिक स्तर का सर्वतोमुखी विकास होता है । पंचकोशों के अनावरण से अनंत आनंददायी ब्रह्म साक्षात्कार संभव हो जाता है ।

यह साधना अत्यंत सरल है । योगी वनवासी तो उसमें अपना पूरा समय लगा ही सकते हैं पर गृहस्थ लोग भी अपने दैनिक और व्यावसायिक कार्यों की व्यस्तता के बाद भी इसके लिए समय निकाल सकते हैं । अपने मन को वश में करते हुए समय संयम करेंगे तो बेकार के कार्यों में जो बहुमूल्य समय नष्ट होता है वही इसके लिए पर्याप्त हो जाएगा । वे अपने साधारण श्रम की साधना द्वारा ही आत्मकल्याण की पूर्णता के

लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं । तुम्हें इन पांचों के बारे में समझाते हैं ।

अन्नमय कोश—यह आत्मा का प्रथम आवरण है और मनुष्य की इंद्रियों से संबंधित है । अपनी इंद्रियों को संयमित करने की ही साधना है । प्रेय मार्ग से श्रेय मार्ग की ओर बढ़ने का विधान है । प्रेय मार्ग वह होता है जो प्रिय लगता है । इसपर चलने से इंद्रियों का आवेश शांत होता है । आगा-पीछा कुछ भी नहीं सूझता । केवल वर्तमान की, आज की, अभी की बात याद रहती है । आज की मौज मस्ती के बदले में भविष्य को अंधकारमय बनाने के खेल को ही प्रेय कहते हैं । आज जिसे देखो वही वासना और तृष्णा की सत्यानाशी सड़क पर बेलगाम घोड़े की तरह अंधाधुंध भागा जा रहा है । । इस बात पर अंकुश लगाने की आवश्यता है या नहीं । अध्यात्म से विमुख होकर भौतिकवादी दृष्टिकोण में प्रवृत्त मनुष्य प्रेय मार्ग में इतना आसक्त हो जाता है कि आटे के साथ कांटा निगलने वाली मछली की तरह जानबूझकर स्वयं अपना ही सर्वनाश कर लेता है ।

तो यह है प्रेय माग । इसमें सबसे बड़ा दोष यही है कि सीमित मात्रा में उपभोग सुख प्राप्त होने से संतोष नहीं होता । जितना भी उपभोग मिलता है उतनी ही तृष्णा बढ़ती जाती है । इंद्रिय सुख, धन-दौलत, मान-सम्मान, सत्ता अधिकार के लिए मन ललचाता रहता है । इन सबको प्राप्त करने के लिए मनुष्य चोरी, बेईमानी, दगाबाजी, छल, कपट, हत्या, शोषण आदि अनेकानेक दुष्कर्म करता रहता है । पाप के दल-दल में धंसता ही जाता है ।

इसके विपरीत श्रेय मार्ग है । इसमें आज की अपेक्षा कल को महत्व देना और भविष्य के सुख के लिए आज संयम को अपनाना पड़ता है । श्रेय मार्ग का पथिक आरंभ में घाटे में रहता दिखाई देता है जबकि प्रेय मार्ग वाले को तुरंत ही लाभ मिलता है । श्रेय मार्ग पर चलने वाले का उपहास भी होता और उसे मूर्ख समझा जाता है । यही दूरदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता की परीक्षा का समय है । जो इसमें चूक गया वह अनंतकाल तक पछताता रहता है । बीता हुआ समय तो पुनः वापस आ नहीं

सकता । यही अन्नमयकोष की साधना है ।

श्रेय मार्ग पर चलते हुए जो कष्ट सहन किया जाता है उसे ही तप कहते हैं । व्रत, उपवास, संयम, नियम, त्याग, तप आदि का विधान इसी लिए किया गया है । इसीसे आत्मिक प्रगति संभव होती है । आत्मिक प्रगति का पहला कदम है कि हम अपना जीवनोद्देश्य निश्चित करें । यह लक्ष्य प्रेय मार्ग से नहीं, श्रेय मार्ग से ही प्राप्त हो सकता है । भोग के स्थान पर संयम और विलास के स्थान पर तप की साधना हो । तप का उद्देश्य है इंद्रिय-संयम के लिए कष्ट सहना । सप्ताह में एक दिन अस्वाद व्रत करें, बिना नमक और बिना मीठे का भोजन करें । इंद्रिय संयम की यह बहुत ही सरल विधा है । अन्नमयकोश को शुद्ध करने एवं जीतने के लिए अन्न की शुद्धि भी आवश्यक है । धीरे-धीरे सात्विक भोजन का अभ्यास डालते हुए इस महान प्रक्रिया को भी पूर्ण किया जा सकेगा । इसी पर मन की शुद्धि निर्भर है । अब बताओ बेटे, इस साधना के लिए किसी अतिरिक्त समय की आवश्यकता है क्या ?"

"हां गुरुदेव, यह तो केवल मन को वश में करने से ही हो जाएगा । इसमें तो कोई भी अतिरिक्त समय नहीं चाहिए ।" हमने संतुष्ट भाव से कहा ।

"हां बेटे, यही पंचकोश की साधना का रहस्य है । अब आगे देखो ।"

मनोमय कोश—अन्नमय कोश के बाद आत्मा का दूसरा आवरण मनोमय कोश है । मन को शुद्ध बनाने के लिए सद्विचारों की नियमित धारणा ही एकमात्र उपाय है । इसे शिक्षित लोग पुस्तकें पढ़कर और अशिक्षित दूसरों से सुनकर पूरा कर सकते हैं । इसी को स्वाध्याय एवं सत्संग कहते हैं । हाड़-मांस के शरीर की दृष्टि से मनुष्य अत्यंत ही तुच्छ है । उसके अंदर जो कुछ विशेषता है वह उसकी आंतरिक चेतना ही है । विवेक और विचार के बल पर ही उसे स्रष्टि का सर्वोत्तम जीव कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

पूजा, स्नान आदि की तरह स्वाध्याय भी हमारा नित्यकर्म होना चाहिए । अपने चारों ओर फैले विषाक्त वातावरण का दूषित प्रभाव हर

समय हमारे मन पर पड़ता रहता है । उसकी सफाई करने के लिए नित्य ही स्वाध्याय आवश्यक है । जिस प्रकार बर्तनों को रोज मांजते हैं, कमरे को रोज झाड़ते हैं, दांत रोज साफ करते हैं, शरीर व कपड़ों की स्वच्छता का ध्यान रखते हैं उसी प्रकार मन को भी रोज ही स्वाध्याय द्वारा मांज व धोकर साफ रखना होता है ।

स्वाध्याय और सत्संग से, मनन और चिंतन से आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति पैदा होती है । इसके द्वारा मन से कुविचारों को हटाकर उनका स्थान सद्‌विचारों को दिलाना पड़ता है । प्रति दिन एक घंटे का समय स्वाध्याय व सत्संग के लिए नियमित करना कठिन नहीं है । जीवन को समुन्नत बनाने की प्रेरणा देने एवं उनका उपाय बताने वाला साहित्य ही स्वाध्याय के लिए चुनें । धीरे-धीरे समझकर उसे पढ़ें और उसपर मनन व चिंतन करें । एक छोटा पुस्तकालय तो हर एक को अपने घर में अवश्य बनाना चाहिए । इसे ज्ञान मंदिर के रूप में श्रद्धा एवं पवित्रता के साथ स्थापित किया जाए । अच्छी, श्रेष्ठ व प्रेरक पुस्तकें एक अल्मारी में सुसज्जित रूप में रखें और नियमित स्वाध्याय करें तथा औरों को भी इसके लिए प्रेरित करें ।

आजकल उपयुक्त सत्संग का तो सर्वथा अभाव ही दीखता है । इसलिए इस प्रक्रिया को स्वयं ही आरंभ करने का प्रयास करना चाहिए । कम से कम इतना तो आसानी से हो सकता है कि घर के बच्चों को रात सोने से पहले इकट्ठा कर लिया जाए और उन्हें रोचक ढंग से कथा-कहानियां सुनाई जाएं । कथा प्रसंगों के बीच-बीच में उपदेशात्मक शिक्षा भी देते चलना चाहिए । इसमें परिवार की स्त्रियां भी भाग ले सकती हैं । धीरे-धीरे इस क्रम में आस-पड़ोस के बच्चों व बड़ों को भी शामिल किया जा सकता है । संगठित रूप से मोहल्ले व कालोनी में भी साप्ताहिक सत्संग की व्यवस्था की जा सकती है ।

प्राणमय कोश—बेटे, पशुओं में शरीर बल काम करता है किंतु मनुष्य का प्रधान बल तो उसका मनोबल ही है । यदि मनोबल पर्याप्त

हुआ तो साधारण शरीर होते हुए भी वह महान कार्य कर सकता है । साहस के बल पर लोगों ने बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे कर दिखाए हैं । असहाय फरहाद ने तो अपनी प्रेमिका शीरी की खातिर बड़े पर्वतों को काट-काट कर एक लंबी नहर खोदकर तैयार कर दी थी । उसके पास एकमात्र मनोबल की ही पूंजी थी जिसके आधार पर असंभव कार्य भी संभव हो सका ।

मनोबल की न्यूनता और संकल्पशक्ति की दुर्बलता ही मनुष्य की सारी मुसीबतों की जड़ है । जानते हो इतना उपयोगी एवं महत्वपूर्ण 'मनोबल' आखिर क्या है ? शरीर और मस्तिष्क बल भी अवश्यक एवं उपयोगी हैं, पर मनोबल इन दोनों से भिन्न है । वस्तुतः इस महान तत्व की अपनी स्वतंत्र सत्ता है जिसे 'प्राण तत्व' कहते हैं । प्राण ही जीवन है । भीष्म पितामह के शरीर में यह 'प्राण' ही प्रचुर मात्रा में था जिसके बल पर वह छः महीने तक शरशैया पर पड़े रहे और शरीर त्याग के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करते रहे । रोगी व्यक्ति में भी यदि प्राणतत्व की समुचित मात्रा हो तो वह देर तक बीमारी से मुकाबला कर सकता है और असाध्य लगने वाले रोगों को भी परास्त कर सकता है ।

गायत्री शब्द का अर्थ ही है, प्राणों की रक्षा करने वाली । प्राणशक्ति का अभिवर्धन ही गायत्री उपासना की मूल उपलब्धि है । प्राण साधना से ही आत्म उत्कर्ष का मार्ग सधता है । मनुष्य वीर, बलिष्ठ, पराक्रमी और तेजस्वी बनता है । उसके भीतर की असीम सूक्ष्म शक्तियां केंद्रित होकर संकल्प शक्ति को परिपुष्ट करती हैं । दृढ़ निश्चय और धैर्य की वृद्धि होती है । संकल्प पूर्ति के लिए जो व्रत धारण किया जाता है उसे प्राणपण से पूरा करने की शक्ति जाग्रत होती है । शारीरिक असुविधाएं उसमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं कर पातीं । किसी प्रकार की मानसिक शिथिलता भी नहीं आने पाती । एक के बाद एक संकल्प पूर्ण होने से मनुष्य का साहस बढ़ता है और वह बड़े से बड़े कठिन कार्य भी दृढ़तापूर्वक पूरा कर सकने वाले महापुरुषों की श्रेणी में जा पहुंचता है ।

प्राणायाम के द्वारा प्राणमय कोश की साधना सधती है । आध्यात्मिक दृष्टि से इनकी महत्ता अत्यधिक है । मन की चंचलता को दूर करके उसमें एकाग्रता उत्पन्न करने का यह एक अमोघ अस्त्र है । इसे बच्चे, बूढ़े, रोगी, निरोगी सभी आसानी से कर सकते हैं । प्रारंभ में पांच प्राणायाम करें फिर धीरे-धीरे बढ़ाने का प्रयास करें । प्रात:काल नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पाल्थी मारकर बैठें, धीरे-धीरे गहरी सांस खींचे, दोनों नथुनों को बंद करके कुछ देर सांस को भीतर रोकें, धीरे-धीरे बाहर निकालें और फिर कुछ देर सांस को बाहर ही रोकें अर्थात बिना सांस के रहें । इसमें किसी प्रकार की जोर जबरदस्ती न करें । जितनी देर संभव हो सके उतना ही सांस को रोकें । यही प्राणमय कोश की सरलतम साधना है । जिसे अवश्य ही करना चाहिए ।

विज्ञानमय कोश–इस साधना में भावना का परिष्कार प्रधान है । आत्मा पर छाए हुए मल आवरण, कषाय-कल्मष दूर करने की साधना है यह । इसमें सतत एवं निष्पक्ष आत्म-निरीक्षण की अपेक्षा की जाती है, कठोर आत्म-समीक्षा का अभ्यास किया जाता है । अपने दोषों, दुर्गुणों का परित्याग करना होता है । यदि स्वयं अपने दोष समझ में न आवें कोई दूसरा बतावे तो उस पर क्रोध आए फिर आत्म सुधार की गाड़ी आगे कैसे बढ़ेगी ?

आत्म-सुधार की यह साधना सुव्यवस्थित रूप से आरंभ करनी चाहिए । प्रत्येक मनुष्य में अनेक दोष-दुर्गुण भरे हैं, वे सभी एक साथ नहीं छूट सकते । पैर में कई कांटे चंभ जाएं तो एक-एक करके ही उन्हें निकाला जाता है । इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक-एक करके अपनी बुराइयों का परित्याग करते रहना चहिए ।

आनंदमय कोश–इस साधना का उद्देश्य अपनी प्रेम भावना को बढ़ाना, अपने चारों ओर प्रेमपूर्ण वातावरण उत्पन्न करना है । आत्मा के इस अंतिम द्वार के खुलते ही आत्मदर्शन का अलौकिक आनंद अनुभव होने लगता है । आत्मा के आनंद का स्रोत तो प्रेम ही है । इस प्रेम तत्त्व

का जो जितना अधिक रसास्वादन कर लेता है, उसकी आत्मा उतनी ही अधिक आत्मविभोर रहती है ।

पति-पत्नी में, भाई-भाई में, मित्र-मित्र में जहां भी सच्चा प्रेम होता है वहां वे अपने को असाधारण बलशाली अनुभव करते हैं । कहते हैं कि निर्जीव वस्तुएं तो एक और एक मिलकर दो होती हैं पर सजीव मनुष्य इस प्रेम की डोर से बंधकर एक और एक ग्यारह हो जाते हैं । यही अनंदमय कोश की साधना है । मनुष्य गायत्री मंत्र का जप करते हुए चारों ओर अपनी दिव्य सुगंध से परम आनंददायक वातावरण का निर्माण कर सकता है । मानव-जीवन में यदि कोई रस है, कोई सार है तो वह प्रेम ही है । इसी प्रेम भावना से भगवान को वश में किया जा सकता है ।

अब बताओ बेटे, इस पंचकोशी साधना में किसी को क्या कठिनाई हो सकती है ?"

"हां गुरुदेव आप ठीक कहते हैं । यह तो बहुत ही सरल और लाभदायक है ।" हमने पूर्ण संतुष्टि से कहा ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)